जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2530

जिन प्रतिमाएँ
गोपाचल पर्वत, ग्वालियर किला, म.प्र. (9 वीं शती ई.)

ज्येष्ठ, वि.सं. 2061 मई 2004

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

मई 2004 मासिक **जिनभाषित** वर्ष 3, अङ्क 4

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2151428, 2152278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ **आपके पत्र, धन्यवाद** 1
- ◆ **सम्पादकीय** : थोड़ी सी और सुनिये 5
- ◆ **प्रवचन**
  - भट्टारक स्वरूप समझें : आ.श्री विद्यासागर जी 8
- ◆ **लेख**
  - आदर्शगुरु के आदर्शमयी... : मुनिश्री अजितसागर जी 12
  - जैनधर्म में अहिंसा की व्याख्या : स्व. पं. मिलापचन्द कटारिया 15
  - सिद्धक्षेत्र गिरनार पर सौहार्द ... : डॉ फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' 16
  - वनस्पतिकाय : जैन मान्यता ... : डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी' 17
  - छहढालाकार पं. दौलतराम जी : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 21
  - इंटरनेट पर 'जैन समाज' : सीमा जैन एवं दीपेश जैन 26
  - भारतीय साधना में मन की ... : डॉ. श्रीमती पुष्पलता जैन 28
- ◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 23
- ◆ **बोध कथा : समाधान** : डॉ. कु. आराधना जैन
- ◆ **कविताएँ**
  - जिंदगी : डॉ. वन्दना जैन 20
  - गीत : पथिक 27
  - उड़ान
  - निसर्ग : मुनिश्री क्षमासागर जी आ.पृ. 3
- ◆ **समाचार** 30 -32
- ◆ जैन वाङ्मय के प्रामाणिक
  दस्तावेज : पूज्य प्रमाणसागर जी : सुरेश 'सरल' आ. पृ. 4

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

बहकती क्रान्ति : सुबकती शान्ति

'जिनभाषित' के मार्च अंक में आपका अग्रलेख **'नाटक का अनाट्यशास्त्रीय प्रयोग'** पढ़ा था। रात्रि में आदिकुमार की बारात और विवाह की संयोजना की सलाह कोई 'शन्तिदूत' तो दे ही नहीं सकते थे। यदि कदाचित् दे भी देते, तो आगमोक्त और सही तर्क सुनकर यह स्वीकार करने में उन्हें जरा सी भी देरी नहीं लगती कि भूल हो गई, किन्तु जो अपने को 'क्रान्तिदूत' मानते हैं, वे ऐसे कैसे सहन कर लेते कि कोई प्रबुद्ध श्रावक इस पर नुक्ताचीनी करे। गत ६ अप्रैल को टी.टी. नगर स्थित मंदिर-परिसर में पूज्य संतश्री और मानस्तम्भ की छाया तले जो भी हुआ, अप्रैल के अंक में आपकी कलम से **'मेरी बात भी सुनिए'** को पढ़ सुनकर तन-मन दोनों ही सिहर उठे। क्या इसी का नाम क्रान्ति है ?

एक प्रतिशत सतीत्व के आपके वाक्यांश को तो बहाना बनाया गया, सौ प्रतिशत सच तो यही था कि इस तथाकथित क्रान्ति को शान्ति अच्छी नहीं लगती। अब तक तो यही पढ़ा था कि जहाँ कोई सातिशय मूर्ति (निर्ग्रन्थ संत या जिनप्रतिमा) विराजमान रहती है, वहाँ शेर और गाय भी आपस में बैरभाव भूलकर साथ-साथ शान्तिपूर्वक बैठे हुए देखे जाते हैं, किन्तु यहाँ तो मानव-मानव के बीच नफरत की आग को हवा दी गई। एक ओर तो थे आप सरीखे अनुपस्थित कलमकार और दूसरी ओर थी स्वयं को मुनिभक्त मानने वालों की उन्मादी भीड़, जिसके विवेक-चक्षुओं पर परदा पड़ा था। यह सच है कि इस अवसर पर संयोग से आप वहाँ होते, तो वहाँ आपका छठवाँ कल्याण हो सकता था।

कभी ऐसे ही किसी प्रसंग को देखकर एक अंग्रेज ने दूसरे अंग्रेज को यह नेक सलाह दी होगी- 'If you go to India, don't meet with a jaini, otherwise he will cut your throat for a paini.' यहाँ तो बिना पैनी के ही आप नफरत की छैनी के शिकार हो गए।

आपकी हस्तरेखाओं में अलफ थी, वह पुण्योदय से टल गई। इस खुशी में मैं यहाँ आपकी ओर से बतासे बाँट रहा हूँ। यह घटना वैसे तो भयावह थी, पर नफरत की धुन्ध छटने पर यह सुखद सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

नरेन्द्रप्रकाश जैन
सम्पादक - जैनगजट
१०४, नई बस्ती, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

आपसे मेरी भेंट तो टी.टी. नगर, जैन मंदिर (टिन शेड) के कुछ कार्यक्रमों में हुई है, किन्तु आपसे मेरी विशेष नजदीकी नहीं है। किन्तु मैं यह जानता हूँ कि आपको जैनधर्म के आगमग्रंथों का उत्तम अध्ययन है। 'जिनभाषित' का पहला ही अंक मैंने आज पढ़ा और आपका सम्पादकीय 'मेरी बात भी सुनिये' पढ़ा। मैं इतना प्रभावित हुआ कि अपनी कलम को रोक नहीं सका। आप साधुवाद के अधिकारी हैं कि आपने हिम्मत करके 'मूल गुणों में शिथिलाचार' पर लेख लिखा। मैं आपके लेख की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ और यह भी कहना चाहता हूँ कि जैन मासिक पत्रिकाओं में काफी लेख छपते हैं, किन्तु आगमसम्मत लेख छापने की आपने जो हिम्मत दिखाई, वह अनुकरणीय है, वन्दनीय है। हम व्यक्तिगत भय की बजह से यदि आगमसम्मत बात नहीं करेंगे, तो हमें जैन कहलाने का अधिकार नहीं है। असंयमी को नमस्कार नहीं करना आगम का मूल सिद्धान्त है और इस विषय पर असहमत होने की कोई गुंजाइश जैनधर्म में नहीं है। पण्डित दौलतराम जी द्वारा लिखे छन्द जो छहढाला में हैं, वे जैन धर्म की जान हैं और पं. बनारसीदास जी ने भी समयसार नाटक के माध्यम से जैन आगम की खरी बात हमें परोसी है।

जिन लोगों ने आपके सम्पादकीय को पढ़कर घृणा का वातावरण फैलाया है, वे सब अज्ञानी हैं

आपका यह कहना भी शतप्रतिशत उचित है कि जिनागम में आतंक के बल पर निन्दा और बहिष्कार का प्रस्ताव पास करने का उपदेश रंचमात्र भी नहीं है।

अंत में आप जैसे वयोवृद्ध, विद्वान से यही निवेदन है कि भविष्य में भी अच्छे -बुरे की कोई फिक्र न करते हुए आगमसम्मत बात कहें, इसकी आपको कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। मुझे विश्वास है कि आगम में जिनकी रुचि है, वे आपको साधुवाद ही प्रेषित करेंगे। मुझे इस पत्रिका का आजीवन सदस्य बनाने की कृपा करें।

महेन्द्र चौधरी
अध्यक्ष- जैन समाज, कोहेफिजा
ई-३१/बी.डी.ए. कॉलोनी, कोहेफिजा भोपाल

मीठा जहर नहीं, कड़वी औषधि ही चाहिए

'जिनभाषित' अप्रैल २००४ का सम्पादकीय पढ़ा। यह विरोध उस गहरी बीमारी का लक्षण है, जिससे शनैः शनैः अज्ञातरूप से सम्पूर्ण समाज ग्रसित होता जा रहा है। आगम में मुनियों एवं श्रावकों की चर्या का सुस्पष्ट उल्लेख है। श्रावक का धर्म मुनिचर्या में सहायक होना है। शिथिलाचारी की आलोचना नहीं, अपितु स्थितीकरण ही उपादेय है। प्रश्न किंतु वही है, क्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझदार को समझाया जा सकता है ? लोकैषणा और आत्मप्रभावना की तीव्र चाहत 'अहो रूपम् अहो स्वरम्' के समीकरण को जन्म देती है और धर्म की तथाकथित ध्वजा के तले अनाचार का व्यापार फलने-फूलने लगता है। धंधेबाजों द्वारा निर्मित ये समीकरण धर्म तो नहीं, केवल धर्म का मुलम्मा चढ़ाए सम्प्रदाय मात्र ही हैं। अब यदि आपने इन दुकानदारों की मल्टीलेविल मार्केटिंग चैन पर चोट की, तो उनका तिलमिलाना स्वाभाविक ही है।

धन और भौतिक वैभव की अंधी दौड़ में फँसे इस समाज के नेतृत्व हेतु आज चारित्र्य और आचरण नहीं, बल्कि धन और बाहुबल के रथ पर आरुढ़ होना जरूरी है। इसीलिए किसी शहर में शराब किंग तो किसी में कीटनाशक दवाओं के निर्माता समाज के अध्यक्ष बने हुए हैं।

समाज के ये नादिरशाही ठेकेदार शाम ढलते ही सुरा-सुंदरी का संध्यावंदन कर प्रात: काल मुनियों को बाकायदा पड़गाहने हेतु हाजिर रहने का दु:स्साहस भी रखते हैं।

आपने अपने धर्म का पालन करते हुए लेखनी चलाने का कर्त्तव्य निभाया। उसमें बगैर लाग-लपेट आगम-अनुसार स्पष्ट कहा। यह अभिनन्दनीय है। जीवों के कल्याण एवं उन्हें आत्मधर्म में प्रवृत्त करने हेतु आप्तवाणी खिरती है। इसी तरह विद्वानों की लेखनी समाज को पटरी से उतरता देख करुणावश चलती है, ताकि उसे विनाश से बचाया जा सके। दोनों के मूल में करुणा ही प्रेरणा स्रोत है। यह और बात है कि प्राणी अपने कर्मोदय से अपने परिणाम भोगता ही है। आपने निर्भीक लेखनी से सामाजिक भटकाव को रेखांकित किया और आगम अनुकूल राजमार्ग भी समझाया, किंतु प्रतिक्रिया दर्शाती है कि समाज के ठेकदारों ने उसे कहाँ पहुँचा दिया है! आपकी कर्त्तव्यनिष्ठा ने निर्विवाद रूप से सुधी पाठकों की श्रद्धा अर्जित की है। एक साधारण पाठक के नाते मैं आपका अभिनंदन करता हूँ। संपादक एक लाईट हाऊस की भाँति समाज को विनाश की ओर न बढ़ने की चेतावनी देता है। अब इस कारण उसे ही आक्रामक समाज का शिकार होना पड़े, तो यह समाज के दुर्दिनों का सूचक है। अपनी पाप की कमाई के आतंक के बल पर समाज का नव धनाढ्य वर्ग उसे एक डिजिटल डिवाइड की ओर ले जा रहा है। इन गुंडों और उनके द्वारा पोषित पंडों से समाज को आपके समान निर्भीक बुद्धिजीवी एवं विद्वान सज्जन ही बचा सकते हैं। अत: अपनी धार को और पैना करें, यही इस बीमार समाज की सामयिक औषधि होगी। हम सरीखे पाठक प्राण-प्रण से आपके साथ आगम की रक्षा हेतु कृत-संकल्प रहेंगे।

जिनेन्द्र कुमार जैन
६३/ए, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल

मार्च और अप्रैल २००४ के 'जिनभाषित' में सम्पादकीय लेख पढ़े। मार्च ०४ के सम्पादकीय लेख को लेकर टी.टी. नगर मंदिर जी में जो आयोजन हुआ, वह धर्म एवं मंदिर की गरिमा के प्रतिकूल था। यह सब स्वार्थी लोगों द्वारा प्रायोजित था। अधिकांश श्रोताओं को वस्तुस्थिति का ज्ञान नहीं था। आधा सच बताकर लोगों को भ्रमित किया गया। आपने मार्च के सम्पादकीय में ही 'मैं मुनिश्री में एक प्रतिशत भी शिथिलाचार नहीं मानता' लिखकर स्थिति एकदम स्पष्ट कर दी है।

आपकी मुनिभक्ति एवं विद्वत्ता मैंने करीब से देखी है, जानी है। बढ़ती कुरीतियों पर आपका प्रहार उचित एवं जैन सिद्धान्त के अनुरूप है। टी.टी. नगर मंदिर जी में घटना के बाद पाँच-छह पत्र नोटिस बोर्ड पर चिपके देखे गये, जो विभिन्न जिनमन्दिरों के पदाधिकारियों द्वारा लिखे गये थे। सभी ने घटना पर क्षोभ तथा आपके अपमान पर गहरा दु:ख प्रकट किया था। स्पष्ट है कि घटना के बाद लोगों ने वास्तविकता को जानने का प्रयास किया।

इस प्रकार के अवसर सभी पैनी लेखनीवालों के जीवन में आते हैं। कुछ स्वार्थी लोग थोड़े समय तक 'आड़' लेकर भ्रमित कर सकते हैं, पर हमेशा के लिए नहीं। कुप्रथा, कुरीतियों एवं धर्मप्रतिकूल कार्यकलापों पर आपकी लेखनी और पैनी हो, यह कामना है।

सुमतिचन्द्र जैन
पूर्व मुख्य कार्य प्रबन्धक
म.प्र. राज्य परिवहन निगम
७/३, संजय कॉम्प्लेक्स, भोपाल-०३

मैंने अप्रैल २००४ के 'जिनभाषित' में आपका विस्तृत लेख पढ़ा। अशान्त मन को शान्ति मिली। टी.टी. नगर मंदिर में आयोजित धर्मसभा में मार्च २००४ के 'जिनभाषित' में छपे आपके लेख को लेकर जो विवाद उत्पन्न हुआ उससे मुझे गहरी चोट पहुँची थी। इस लेख के कुछ ही अंश पढ़कर धर्मसभा में उपस्थित समुदाय को सुनाये गये थे, पूरा लेख नहीं सुनाया गया। मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि श्री नरेन्द्र वंदना जी ने यह लेख पढ़कर सुनाया था। उन्होंने जानबूझकर आपका लिखा यह अंश पढ़कर नहीं सुनाया कि 'मैं तो उन मुनिश्री में एक प्रतिशत भी शिथिलाचार नहीं मानता हूँ।' मुझे दृढ़विश्वास है यदि पूरा लेख पढ़ा जाता तो प्रतिक्रिया ऐसी होती ही नहीं। एक धर्मसभा में विराजमान समुदाय को गुमराह करने के लिए जानबूझकर यह कृत्य किया गया। उस धर्मसभा में जिन व्यक्तियों ने इस लेख को लेकर आपकी निंदा का प्रस्ताव रखा था और जिन्होंने उसका समर्थन किया था मैं उन सभी व्यक्तियों की घोर निंदा करता हूँ। अगर ऐसे बुद्धिमान लेखकों (सम्पादकों)के लिखने पर रोक लगायी गई तो भविष्य में कोई भी सत्य को लिखने का साहस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं कर सकेगा।

मैं इस पत्र के माध्यम से सभी व्यक्तियों से अनुरोध करता हूँ कि उन व्यक्तियों की निंदा करें, जिन्होंने धर्मसभा में सम्पादक जी की निंदा की थी।

विमल जैन
जी-४०/५, साउथ टी.टी. नगर, भोपाल

'जिनभाषित' (मार्च एवं अप्रैल २००४) में आपके सम्पादकीय लेख पढ़े। '**मेरी बात भी सुनिए**' इस लेख से अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि आपके द्वारा दिया गया दृष्टान्त पूरी तरह आगमानुकूल एवं स्वस्थ है। रात में बारात निकालने का समाचार छाप देने से क्रुद्ध हुए आयोजकों ने उस दृष्टान्त को आपके प्रति विषवमन का माध्यम बनाया, यह निन्दनीय है।

आपकी प्रगाढ़ मुनिभक्ति और आगमनिष्ठता से हम सब सुपरिचित हैं। आप चालीस वर्षों से जिनवाणी की जो नि:स्वार्थ सेवा कर रहे हैं और श्रावकों को धर्मग्रन्थ पढ़ाकर और 'जिनभाषित' जैसी उच्चकोटि की पत्रिका का कुशल सम्पादन कर उनके अज्ञानान्धकार का विनाश कर रहे हैं, इसके लिए आप शतश: अभिनन्दनीय हैं।

हम आपकी निर्भीक लेखनी और वाणी का सम्मान करते हैं और कामना करते हैं कि आप अपनी लेखनी और वाणी से सदैव आगमानुकूल मार्ग का प्रदर्शन और आगमविरुद्ध मार्ग का विरोध करते रहें। आप न्याय के पथ से कभी विचलित न हों।

सुरेश जैन, आई.ए.एस.
३०, निशात कॉलोनी, भोपाल ४६२ ००३

'जिनभाषित' मासिक पत्रिका अंक अप्रैल २००४ में प्रकाशित सम्पादकीय 'मेरी बात भी सुनिये' पढ़ा। मूलगुणों में शिथिलाचार करने वाले मुनि के प्रसंग में सम्पादक द्वारा व्यभिचारिणी स्त्री का दृष्टांत देने पर टी.टी. नगर के जिनालय में विराजमान जिनभक्तों ने सम्पादक के प्रति अशुभ वचनों की बौछार कर जो हिंसाभाव प्रदर्शित किया वह निन्दनीय है।

सम्पादक के विचारों से मैं पूर्णत: सहमत हूँ। जहाँ तक मैं समझता हूँ शायद कुछ बन्धुओं द्वारा दिशाभ्रमित किये जाने के कारण भोपाल के जैन समाज ने धर्मसभा को निन्दा सभा में परिवर्तित कर सम्पादक के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव पास कर दिया।

आशा है आपका सम्पादकीय पढ़ने के बाद समाज भूल सुधार करेगा।

मैं 'जिनभाषित' पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। इस पत्रिका के अध्ययन से मन प्रफुल्लित हो जाता है। पत्रिका में सारगर्भित एवं सटीक रचनायें होती हैं। पत्रिका जैन समाज के लिये सही दिशा में मार्गदर्शक एवं प्रेरक है। पत्रिका का स्वरूप भी बड़ा सुन्दर है। मैं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ. ताराचन्द्र जैन बख्शी
सम्पादक - अहिंसावाणी
बख्शी भवन, न्यू कॉलोनी, जयपुर

'जिनभाषित' अप्रैल २००४ का सम्पादकीय 'मेरी बात भी सुनिये' पढ़ा। विद्वान सम्पादक प्रो. रतनचन्द्र जैन श्रावकों को श्रावकधर्म और मुनिधर्म पर आगमोक्त ही विचार सूत्र दे रहे हैं, इसे अन्यथा न लिया जाये। सारा पत्रकारजगत् उनके साथ है। आशा है जितना उनका अपमान किया गया है उससे चौगुना हम उनका सम्मान करें। मुनिश्री क्षमासागर जी की 'भगवान' कविता पढ़कर हम सम्पादक के ईमान की कद्र करें।

योगेन्द्र दिवाकर, सतना (म.प्र.)

'जिनभाषित' मार्च २००४ के सम्पादकीय (नाटक का अनाट्यशास्त्रीय प्रयोग) के लिये मैं आपको बधाई देना चाहता हूँ, इसलिये भी कि जिस वातावरण में आप रह रहे हैं उसमें इस प्रकार का सम्पादकीय लिखना एक साहसपूर्ण कार्य है। आपने आदिकुमार की बारात रात्रि में निकालने पर आपत्ति की है और आपत्ति के लिये पर्याप्त आधार दिये हैं। किन्तु आप से आगे जाकर मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस प्रकार की बारातों का आयोजन करने से जैनधर्म की क्या प्रभावना हुई और जैन समाज को क्या पुण्य लाभ हुआ?

यह देखा जा रहा है कि अब अवतारवादी धारणा पर आधारित रामलीला, कृष्णलीला आदि की तर्ज पर जैन समाज ने भी व्यापक स्तर पर आयोजन करना प्रारंभ कर दिया है, जिनमें करोड़ों रुपयों की राशि का व्यय होता है। यदि तर्क के लिये यह मान भी लिया जाय कि तीर्थंकर भगवान के कथा-नाटकों का प्रदर्शन करने से जैन धर्म की प्रभावना होती है, तो भी इस बात का क्या औचित्य है कि इनमें 'विवाह कल्याणक' भी जोड़ दिया, जैसा कि आपके द्वारा वर्णित आदिकुमार की बारात से परिलक्षित होता है। जैनधर्म में तप, त्याग, आकिंचन्य एवं ब्रह्मचर्य को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। कुछ तीर्थंकर बालब्रह्मचारी रहे हैं और पुराणों की कथाओं के अनुसार कुछ तीर्थंकरों के विवाह, और कुछ के तो एक से अधिक विवाह हुए थे, किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है, जैन धर्म ने किसी के विवाह को कभी महत्त्वपूर्ण या प्रभावनाकारी घटना नहीं माना है। निश्चय ही विवाह और बारात त्यागप्रधान धर्म के लिये प्रासंगिक भी नहीं हो सकते। ऐसी स्थिति में आदिकुमार की बारात निकालना, वह भी जोरशोर से, इस बात का द्योतक है कि हमारा समाज धर्म के मूल तथ्य से भटककर जैनेतर धर्मों में चल रही परम्पराओं का अनुकरण करने लगा है।

इस तारतम्य में, मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि भगवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ आदि के जन्मदिवस व्यापक स्तर पर मनाने के कुछ वर्षों से जो प्रयास किये जा रहे है, वे बहुत ही प्रशंसनीय हैं, इसलिये कि उनसे यह भ्रान्ति दूर करने में सहायता मिलती है कि जैनधर्म के 'संस्थापक' भगवान महावीर थे। लेकिन जन्मदिन मनाने और उसको 'नाटकीय' रूप देने में परस्पर विरोध है।

मुझे यह आशंका भयभीत कर रही है कि इस प्रकार की बारातों की अगली परिणति कहीं यह न हो कि जन्म कल्याणक के अवसर पर 'बर्थ-डे केक' भी काटा जाने लगे, जैसा कि गर्भ कल्याणक के उत्सव में तीर्थंकर की माता का रोल अदा करने वाली महिला के लिये 'साधौं' का उत्सव मनाना प्रारंभ हो चुका है।

मैं समाज को यह स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि पूज्यपाद गणेशप्रसाद जी वर्णी ने गजरथ चलाने के विरुद्ध एक मुहिम चलाई थी और उन्होंने समाज के सामने यह आदर्श रखा था कि शिक्षा एवं गुरुकुल तथा छात्रावास जैसी संस्थाओं पर ही समाज के धन का व्यय हो। उन्होंने अनेक विद्यालय, छात्रावास एवं गुरुकुल खुलवाये और निर्धन छात्रों के लिये छात्रवृत्तियाँ दिलाने की व्यवस्था पर जोर दिया। क्या गणेशप्रसाद जी वर्णी आज के युग के लिये अप्रासंगिक हो गये हैं?

कन्हैयालाल जैन, पूर्व आई.ए.एस.
ई-४/३९, महावीर नगर, भोपाल

' जिनभाषित' नियमित प्राप्त हो रहा है, आभारी हूँ। मार्च ०४ के अंक में आपका सम्पादकीय 'नाटक का अनाट्यशास्त्रीय प्रयोग' पढ़ा। मैं आपकी निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता पर आपको धन्यवाद देता हूँ।

१०८ मुनि संघ दिगम्बर जैन समाज के कर्णधार हैं। इन्हें दिगम्बर जैन धर्म की प्रतिष्ठा का ध्यान रखकर ही कार्य करने की अनुमति देनी चाहिए।

डॉ. नेमीचन्द्र जैन
सेवानिवृत प्राचार्य - गुरुकुल खुरई
उपमंत्री-अ.भा.दि.जैन विद्वत् परिषद्

'जिनभाषित' पत्रिका के मार्च और अप्रैल २००४ के अंकों में प्रकाशित सम्पादकीय पढ़े। आपकी निर्भीकता, साहस एवं आगम के प्रति निष्ठा सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

अक्सर ऋषभकथा का मंचन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सवों में देखने को मिलता है। उत्सुकतावश मैंने भी अंतिम दिन ऋषभकथा का मंचन देखा था। महाव्रती दिगम्बर मुनियों की उपस्थिति में नीलाजंना -नृत्य, फिल्मी तर्ज पर नृत्य एवं गायन तथा संवाद डिलीवरी आदि कुल मिलाकर गरिमापूर्ण नहीं लगे।

ऋषभकथा का भावपूर्ण शास्त्रोक्त मंचन भी श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणकों में ही प्रासंगिक होता है। रामकथा का मंचन भी तो अक्सर दशहरा-दीवाली के अवसरों पर ही होता है

धरमचन्द्र वाझल्य
ए-९२, शाहपुरा भोपाल

'जिनभाषित' के अप्रैल २००४ के अंक में प्रकाशित संपादकीय 'मेरी बात भी सुनिए' एक सारगर्भित लेख है। आपके जैनशास्त्रोक्त सटीक कथनों से वस्तुस्थिति स्पष्ट हुई है तथा आलोचनाओं का समीचीन उत्तर दिया गया है। समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। मैं पत्रिका में प्रकाशित श्री गुलाब सिंघई, अरेरा कॉलोनी, भोपाल के पत्र से सहमत हूँ, जिसमें कहा गया है कि सच बोलने-लिखने वालों को डराने-धमकाने आदि से भविष्य में कोई मार्गदर्शन देने आगे नहीं आएगा।

'तमस्काय तथा लौकांतिक देवों का निवास स्थान : एक चितंन' लेख में अत्यंत ज्ञानवर्धक, गवेषणात्मक जानकारी प्रस्तुत की गई है, लेकिन चित्र क्र. १,२,३ के मुद्रित न होने से लेख बिना आत्मा के जान पड़ा।

'जिज्ञासा-समाधान' स्तम्भ पं. रतनलाल जी बैनाड़ा का बूंद में सागर समेटने का उत्कृष्ट प्रयास है तथा ज्ञान-वर्धन के द्वार खोलता है।

डी.के. जैन
१८/३० साउथ टी.टी. नगर, भोपाल-४६२ ००३

वीतराग वनाम वित्तराग

धरमचन्द्र बाझल्य

वीतराग के दर्शन कर, वित्तराग का पोषण करते।
अपने हित के साधन में निशि दिन सबका शोषण करते॥
अपने दोष ढाँक, सदा औरों पर दोषारोपण करते।
निवृत्तिमार्ग को त्याग, सदा ही प्रवृतिमार्ग पर चलते रहते॥
महावीर की चर्या का गुणगान सदा ही करते रहते।
चौराहे पर उन्हें खड़ा कर, मंदिर-मंदिर स्वयं विचरते॥

ए/९२, शाहपुरा, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

थोड़ी सी और सुनिये

'उस' दृष्टान्त की निर्दोषता 'उन्हें' भी स्वीकार्य

'जिनभाषित' (अप्रैल २००४) के सम्पादकीय में मैंने लिखा था कि मेरे जिस दृष्टान्त को मुद्दा बनाकर भोपाल के कुछ जैन बन्धुओं ने जैनत्व को लजाने वाला व्यवहार किया था, वह वास्तविक मुद्दा नहीं था। उस दृष्टान्त की निर्दोषता उन्हें भी स्वीकार्य थी। इसका प्रमाण यह है कि ६ अप्रैल २००४ को किये गये कृत्य के बाद भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। शान्ति प्राप्त करने के लिए वे मुझसे 'जिनभाषित' के आगामी अंक में खेद व्यक्त करवाना चाहते थे। मेरे पास सन्देश भिजवाया गया कि मैं अगले अंक में यह छाप दूँ कि रात में बारात निकालने की अनुमति मुनिश्री ने नहीं दी थी। पूर्ण जानकारी के अभाव में मैंने अनुमति की बात लिख दी थी। सन्देश में आगे कहा गया कि इसे मैं अपनी भूल बतलाऊँ और खेद व्यक्त करूँ।

इस सन्देश को पाकर मैं चकित रह गया कि बारात के मुद्दे को लेकर तो मेरी निन्दा और बहिष्कार किया ही नहीं गया था। निन्दा और बहिष्कार का मुद्दा तो मेरे द्वारा दिया गया दृष्टान्त था। उसके लिए मुझसे खेद व्यक्त करने के लिए न कहकर बारात के लिए मुनिश्री की अनुमति होने का समाचार छापने के विषय में खेद व्यक्त करने के लिए कहा गया। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने मेरे दृष्टान्त को खेद व्यक्त किये जाने योग्य (आपत्तिजनक) नहीं माना था। उसकी निर्दोषता उन्हें स्वीकार्य थी। केवल मेरे प्रति साधर्मियों के मन में आक्रोश उत्पन्न करने के लिए उसके आपत्तिजनक (मुनिलांछनकारी) होने का प्रचार किया था। उनके क्रोध का वास्तविक कारण 'जिनभाषित' में इस समाचार का छापा जाना था कि "मुनिश्री की अनुमति से रात में बारात निकाली गयी।" इसलिए मुझसे इसी के विषय में भूल स्वीकार करते हुए खेद व्यक्त करने के लिए कहा गया।

किन्तु मैंने भूल की ही नहीं थी। मैंने तो बारात के विषय में उन बन्धुओं से जानकारी प्राप्त की थी, जिन्होंने नाटक में भगवान् आदिकुमार, उनके पिता नाभिराय और सौधर्मेन्द्र की भूमिका निभायी थी। इन सभी ने मुझे बतलाया कि "महाराज जी ने कहा था कि यह तो नाटक है, यथार्थ नहीं। इसलिए रात्रि में बारात निकालने में कोई हर्ज नहीं हैं।" ये समाज के गण्यमान्य व्यक्ति हैं और नाटक में भगवान् तथा भगवान के पिता जैसी पवित्र आत्माओं का रोल कर रहे थे, जिसे करने का अवसर श्रावकधर्म का निरतिचार पालन करनेवाले को ही मिलता है। तथा ये बन्धु पूज्य मुनिद्वय श्री समतासागर जी एवं श्री प्रमाणसागर जी के भी भक्त हैं, जिनके उपदेश से इन्होंने रात में विवाहादि न करने और उसमें शामिल न होने की प्रतिज्ञा की थी। अत: इनकी बात में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। रात में बारात निकाले जाने को ये मन के किसी कोने में अनुचित जरूर समझ रहे थे। इसलिए उन्होंने स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मुनिश्री के द्वारा उसे नाटक के अन्तर्गत उचित बतलाये जाने की बात कही। इस प्रकार मुझे इन गण्यमान्य धार्मिक बन्धुओं ने जैसी जानकारी दी थी, वैसी ही मैंने अपने लेख में छापी थी। मैंने कोई भूल नहीं की थी।

किन्तु ६ अप्रैल २००४ की सभा में कहा गया कि मुनिश्री ने रात में बारात निकालने की अनुमति नहीं दी थी, आयोजकों और अभिनेताओं ने स्वेच्छा से यह कार्य किया था। यदि ऐसा था, तो उन्होंने मुझे गलत जानकारी दी थी और ऐसा करके उन्होंने मुनिश्री की छवि को विकृत करने का प्रयत्न किया था। इसके अतिरिक्त यदि मुनिश्री की अनुमति के बिना और उनके रोकने पर भी उन्होंने रात को बारात निकाली थी, तो उन्होंने चार मुनिवरों की आज्ञा का अनादर किया था (दो मुनिवर वे, जिन्होंने पहले रात्रि में विवाहादि न करने की प्रतिज्ञा दिलायी थी और दो मुनिवर ये जिन्होंने आदिकुमार की बारात को रात में निकालने से रोका था)। मुनि गुरु होते हैं, गुरु की आज्ञा शास्त्र पर आश्रित होती है, शास्त्र देव की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्यध्वनि पर। अत: गुरु की आज्ञा का तिरस्कार कर उन्होंने देवशास्त्रगुरु तीनों का तिरस्कार किया था, देवशास्त्रगुरु में घोर अश्रद्धा और अभक्ति प्रदर्शित की थी, और जिस दृश्य का रात्रि में सड़कों पर दिखाया जाना निषिद्ध है उसे जैनधर्म की प्रभावना के नाम पर रात्रि में सड़कों पर प्रदर्शित कर जैनधर्म की महान दुष्प्रभावना की थी। इस प्रकार वास्तव में दोषी ये लोग थे। इनके दोषों का उद्घाटन उस सभा में किया जाना चाहिए था और इनसे प्रायश्चित्त कराया जाना चाहिए था। किन्तु किसी ने भी इन पर अँगुली नहीं उठाई। इन्हें आँचल में छिपा लिया गया। इनका सम्मान किया गया और सारा दोष मुझ पर मढ़ दिया। वास्तव में उस दिन अपराधी ही न्यायाधीश बन गये थे, तो ऐसा तो होना ही था।

इस तरह रात्रि में बारात निकालने के लिए मुनिश्री द्वारा अनुमति दिये जाने की बात इन लोगों की सूचना के आधार पर छापी थी। अत: यदि वह सूचना गलत थी, तो मुझे 'जिनभाषित' के अगले अंक में मेरी तरफ से यह छापने के लिए कहा जाना चाहिए था कि ''उक्त बन्धुओं ने मुझे जो यह जानकारी दी थी कि उन्होंने मुनिश्री की अनुमति से रात में बारात निकाली थी, वह गलत थी। उन्होंने मुनिश्री की आज्ञा की अवहेलना कर स्वेच्छा से ही यह कार्य किया था। अत: दोषी वे लोग हैं, मुनिश्री नहीं।''

किन्तु इसके बदले मुझसे यह छापने के लिए कहा गया कि ''मैंने पूर्ण जानकारी के अभाव में यह लिख दिया था कि मुनिश्री की अनुमति से रात में बारात निकाली गयी। बाद में मुझे पता चला कि मुनिश्री ने अनुमति नहीं दी थी। अत: मैं अपनी भूल के लिए खेद व्यक्त करता हूँ।''

इस प्रकार जो वास्तविक अपराधी थे उन्हें बचाकर मुझसे स्वयं को अपराधी घोषित कर खेद व्यक्त करने के लिए कहा गया। अन्याय की भी कोई हद होती है। किन्तु सन्देश भेजनेवालों ने वह हद भी पार कर दी।

एक वाणिज्यजीवी बन्धु ने, जो नाटक के प्रमुख पात्रों में से थे, मुझसे कहा कि आपको रात में बारात निकालने की बात छापनी नहीं चाहिए थी, क्योंकि इससे जैनधर्म की बदनामी हुई है। मैंने पूछा जिस कृत्य का समाचार छपने मात्र से जैनधर्म की बदनामी हो सकती है, उसे श्रावकों के विशाल समूह द्वारा भोपाल के हजारों जैनेतर दर्शकों के सामने प्रदर्शित करने से कितनी बदनामी हुई होगी, यह आपने सोचा है? 'जिनभाषित' में छपी खबर तो केवल तीन हजार जैन घरों में पहुँचती है, आपने तो यह खबर भोपाल की समूची अजैन जनता की आँखों में छाप दी। क्या इससे जैनधर्म की बदनामी नहीं हुई? जहाँ जैन श्रावकों का विशाल समूह स्वयं अजैन जनता के सामने अपने जैनधर्म विरुद्ध आचरण का प्रदर्शन (अनुपगूहन) कर रहा हो, वहाँ दूसरों से उपगूहन के लिए कहा जाना क्या मजाक नहीं है? प्रदर्शन को ही रोकना तो उपगूहन कहलाता है। जब प्रदर्शन हो चुका, तब उपगूहन कैसे संभव है? मैंने उन वाणिज्यजीवी बन्धु से कहा कि मुनिश्री की उपस्थिति में (भोपाल में रहते हुए) रात में बारात निकालकर आपने लोगों के मन में दो विचारों को जन्म लेने का अवसर दिया है। एक तो यह कि मुनिश्री की उपस्थिति में रात को बारात निकाली गयी, इसलिए उसमें उनकी अनुमति होगी। दूसरा यह कि यदि मुनिश्री की अनुमति के बिना यह कार्य किया गया, तो आपने मुनिश्री की आँखों के सामने ही उनकी आज्ञा का तिरस्कार कर उनका घोर अपमान किया है और देवशास्त्रगुरु तीनों के प्रति अश्रद्धा और अभक्ति प्रकट की है।

आगम में धर्म विरुद्ध आचार-विचार के हर प्रकरण में उपगूहन (मुँह और कलम बन्द रखने) का उपदेश नहीं है। 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है-

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपप्रकाशने॥ ९/१५॥

अर्थ- जब धर्म का नाश होने लगे, आचार के ध्वस्त होने की नौबत आ जाय और समीचीन सिद्धान्त संकट में पड़ जाय, तब इनके सम्यक् स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए ज्ञानियों को स्वयं ही मुँह खोलना चाहिए।

तात्पर्य यह कि जब किसी मुनि या श्रावक के द्वारा अथवा उनके समूह के द्वारा जिनशासन-विरुद्ध आचार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार को जिनशासन-सम्मत सिद्ध करने की चेष्टा की जा रही हो, जब जिनशासन-प्रतिकूल आचरण अपनाकर श्रावकों से उसे मान्यता दिलायी जा रही हो और ऐसा करके जिनशासन के मूलस्वरूप का विध्वंस किया जा रहा हो, तब जिनशासन-भक्त मुनियों और श्रावकों को उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए और समीचीन आचार-विचार का प्रकाशन और प्रचार करना चाहिए। अन्यथा जिनशासनविरुद्ध आचार-विचार फैलता ही जायेगा और एक दिन वह जिनशासन के मूलस्वरूप को लील जायेगा। अतः ऐसे दावानलवत् जिनशासनघाती आचार-विचार के उपगूहन का उपदेश आगम में नहीं है।

आज हम देखते हैं कि एक तरफ एकान्तनिश्चयवाद पाँव पसार रहा है। वर्तमान में अनेक मुनिसंघ आगमानुकूलचर्या करते हुए प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं। फिर भी यह आगमविरुद्ध विचारधारा फैलाई जा रही है कि पंचमकाल में कोई सच्चा मुनि नहीं हो सकता, सब मुनि द्रव्यलिंगी होते है, अतः कोई भी मुनि पूज्य नहीं है। व्रतसंयमादि को मात्र पुण्यबन्ध का कारण, निमित्त को अकिंचित्कर और जीव की प्रत्येक पर्याय को क्रमबद्ध (नियत)बतलाया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप श्रावक अकर्मण्य और व्रतसंयमादि से विमुख हो रहे हैं। दूसरी ओर अनेक मुनि घोर शिथिलाचारी हो रहे हैं। अट्ठाईस मूलगुणों का भी पालन नियमपूर्वक नहीं करते। परीषहों से बचने का प्रयत्न करते हैं, और लौकिक ख्याति की तीव्र आकांक्षा से ग्रस्त हैं। वे श्रावकों को पंचपरमेष्ठी की भक्ति से विमुखकर लौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि शासन-देवताओं की पूजा-भक्ति हेतु प्रेरित करते हैं। मंत्र-तंत्र द्वारा ऐहिक कार्यों की सिद्धि का प्रलोभन देकर भक्तों की भीड़ जुटाते हैं। मुनिवेश में रहते हुए भी गृहस्थों की भट्टारकगद्दी पर आसीन हो जाते हैं और मन्दिर-मठ-तीर्थ आदि की व्यवस्था का गृहस्थोचित कार्य करने लगते हैं अथवा मुनिवेश छोड़कर और सर्वांगवस्त्र धारणकर 'भट्टारक' नामक गृहस्थ बन जाते हैं और यही कार्य करने लगते हैं, फिर भी पिच्छी-कमण्डलु रखते हैं और अपने को क्षुल्लक कहकर पुजवाते हैं।

ये उन्मार्गी एकान्तनिश्चयवाद और एकान्तव्यवहारवाद, दोनों जिनशासन की दुष्प्रभावना करते हुए उसके मूलस्वरूप की जड़ों पर कुठाराघात कर रहे हैं। क्या जिनेन्द्रदेव की इनके उपगूहन की आज्ञा हो सकती है? कदापि नहीं, क्योंकि इनका उपगूहन जिनशासन की अन्त्येष्टि का कारण होगा। इसीलिए आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव के पूर्वोद्धृत श्लोक में कहा है कि विद्वानों को आगमविरुद्ध आचार-विचार का डटकर विरोध करना चाहिए और आगमसम्मत आचार-विचार का उपदेश देना चाहिए। अर्थात् मुनिराजों, पण्डितों और पत्रकारों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने प्रवचनों, भाषणों और लेखों से उपर्युक्त प्रकार के जिनशासनविरुद्ध आचार-विचारों का विरोध करें और उन्हें फैलने से रोकें। मुनिश्री के भोपाल में रहते हुए रात में बारात निकाल कर जैन बन्धुओं ने सम्पूर्ण भारत के जैनों में यह आगमविरुद्ध विचार फैलाने की भयंकर भूल की है कि नाटक के अन्तर्गत रात में सड़कों पर बारात निकालना आगमविरुद्ध नहीं है। इसलिए मैंने 'ज्ञानार्णव' के उपर्युक्त वचनों का पालन करते हुए 'जिनभाषित' में लेख लिखकर इस विचार को आगम विरुद्ध बतलाया है, जिससे अन्य स्थानों के जैनबन्धु इसका अनुकरण न करें। अतः पूर्वोक्त वाणिज्यजीवी बन्धु का यह कथन आगमसम्मत और जिनशासन-हितकारी नहीं है कि मुझे बारात निकालने की बात नहीं छापनी चाहिए थी।

यदि पत्र-पत्रिकाओं में कोई समाचार गलत छपता है, तो उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में स्पष्टीकरण छपवाकर उसका खण्डन किया जा सकता है। यदि स्पष्टीकरण सही है, तो सम्पादक अपनी गलती के लिए खेद व्यक्त करता है। किन्तु स्पष्टीकरण न छपवाकर पत्रिका को जलाने और सम्पादक को मिटाने का विचार मन में लाना तो जैनों का चरित्र नहीं है, जैनधर्म को मिटानेवालों का चरित्र है। जिनशासन-भक्तों को ऐसे चरित्रवालों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्टारक स्वरूप समझें

आचार्य श्री विद्यासागर जी

सोमवार, ८ नवम्बर १९९९ कार्तिक वदी अमावस्या दीपावली, गोम्मटगिरि, इन्दौर पर दिया गया ऐतिहासिक प्रवचन

कार्तिक वदी अमावस्या के दिन चातुर्मास वर्षायोग का निष्ठापन किया जाता है जिस दिन वीर भगवान का निर्वाण हुआ था। वर्षायोग के समय में श्रमण अपनी चर्या को साधना के लिये बाँध लेते हैं। जैन-सिद्धांत और आचार संहिता के अनुसार जैन श्रमण-साधक एक स्थान पर कहीं भी रुक नहीं सकते। जैन श्रावक साधु को रोकने की इच्छा तो करते हैं, लेकिन संतों ने इस आग्रह को स्वीकार नहीं किया। काल तथा परिस्थिति के अनुसार कितनी भी विकट परिस्थितियाँ आ जायें, किंतु एक स्थान पर रुक कर के मोह के कारण वे आश्रय नहीं ले सकते। वे साधु-श्रमण कहलाते हैं। श्रमण जिस दिन इस क्रिया को छोड़ देंगे, उस दिन धर्म के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह आ जायेगा। यह कार्य बिना मोह के संभव नहीं हो सकता। काल, मान, परिस्थिति अथवा राजकीय सत्ताओं के कारण पूर्व में कुछ ऐसा समय आ गया था और उस समय कुछ परिधियाँ बँध गयी थीं। कुछ प्रदेशों में विहार होता था, कुछ में नहीं हो पाता था। उन थपेड़ों को सहन करते हुए भी परंपरा अक्षुण्ण रूप से आज तक कायम है।

किसी-किसी क्षेत्र में अपवाद देखने को मिलते हैं, उसकी दशा किस ढंग से भयानक हुई है, जो समाज के सामने आज विद्यमान है? उसी का परिणाम है कि श्रमणों अर्थात् साधुओं के सामने विहार की एक समस्या आ गयी। इसी कारण भारत में एक प्रकार से भट्टारक परंपरा उद्भूत हो गयी। भट्टारक मठाधीश बन गये। कालांतर में श्रमणों ने एक स्थान पर रहते हुए भी वस्त्रों को अंगीकार कर लिया। श्रमण संस्कृति का उज्ज्वल साहित्य अपने यहाँ विद्यमान है। किंतु भट्टारकों की परंपरा के संबंध में कोई साहित्य अपने यहाँ उपलब्ध नहीं है। जो अपवाद मार्ग होता है उसके लिये कोई साहित्य की रचना नहीं की जाती है। आज बड़े-बड़े विद्वान और सेठ, साहुकार भी इसका कड़वा घूँट पीते चले जा रहे हैं। उनके लिये हमारा विशेष रूप से निवेदन है यदि वे नेता (समाज के) जैन-समाज के दूषण को समाप्त करने के लिये इस कार्य में भाग लें और मिटाने के लिये संकल्प कर लें तो बड़ा काम होगा। जैन-समाज का वे बड़ा काम कर देंगे।

समाज के नेता लोगों को अब इस ओर काम करना चाहिए। कल ही मैं कहना चाहता था लेकिन बंधन था (चातुर्मास-निष्ठापन नहीं हुआ था)। अब आज मैं बँधन मुक्त हो गया हूँ। हमारे यहाँ श्रीमान् बहुत हैं, लेकिन स्वाध्यायशील नहीं हैं। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा है, महासमिति है और अन्य संस्थाएँ भी हैं। ये हमारे सामने समस्या लेकर तो आ जाते हैं किंतु जब हम शास्त्रोक्त पद्धति से कहते हैं तो उसके लिये आनाकानी कर देते हैं। एक समय इन श्रीमानों के सामने ऐसा आ सकता है, तब इन्हें बहुत पश्चाताप करना पड़ेगा। इस संबंध में एकान्त में भी कहा, सुना तो, लेकिन इन लोगों ने इस बात को (हमारी बात को) स्वीकारा नहीं। या तो बात सुन ली या कुछ सामाजिक समस्याओं का बहाना कर आनाकानी कर दी। आज समाज के सामने मैं संदेह का कारण बन चुका हूँ। आप क्यों नहीं बोलते हैं? हमारे पास खुले पत्र आते हैं : 'क्यों महाराज! आप इस बारे में बोलते क्यों नहीं हैं? संभव है आप ख्याति, पूजा के चक्कर में हैं।' अनेक ऐसे श्रीमान् (समाज प्रमुख) जानते हुए भी इस दूषण को दूर करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। भट्टारकों की इस प्रकार की परंपरा आगमोक्त अनुसार नहीं है। जैन-साहित्य में इस चर्या के बारे में कोई उल्लेख नहीं है। उस चर्या का बड़े-बड़े सेठ, साहुकार आँख मीचकर समर्थन कर रहे हैं। उनके कारण महान् कुंदकुंद-साहित्य को एक प्रकार से धक्का लग रहा है। आचार्य शांतिसागरजी महाराज, आचार्य समंतभद्र महाराज तथा और भी अनेक आचार्य हुए हैं। उन्होंने भी इस परंपरा को आगमोक्त नहीं माना। किंतु कई सेठ, साहुकारों ने इसे आगमोक्त कहते हुए इसका समर्थन किया है। इस (भट्टारक) परंपरा को निश्चित रूप से बंद कर देना चाहिये। समाज की निष्क्रियता का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान में उत्तर भारत में मुनियों को भट्टारक परंपरा बनाने और उसे विशेष रुप से प्रोत्साहित करने का कार्य किया जाना है। मेरे सामने यह समस्या आयी है तो मैंने कहा इसका समर्थन करने वाले कौन हैं? तब पता चला दक्षिण के भट्टारकों ने दिगम्बर मुनि महाराज को भट्टारक बनाने का एक बीड़ा उठाया है। उनके समर्थक जो कोई भी होंगे, जैन-शासन को जानने वाले नहीं होंगे। जो जैन-शासन को जानते हैं तो उन्हें चाहिए की वे इस कदम को वापस ले लें। यदि ऐसा नहीं होता है, कदम पीछे नहीं लिया जाता है तो भयानक स्थिति होगी, ध्यान रखना। यहाँ पर केवल एक बार भोजन करने मात्र से श्रमण परंपरा निश्चित नहीं की जा सकती। ध्यान रखो, जो व्यक्ति परिग्रह का समर्थन करेगा और परिग्रह, आरंभ का समर्थन करेगा, जैन शासन में उसे श्रमण कहने/कहलाने का अधिकार नहीं है। जो मठाधीश होकर के बैठ रहे हैं, वे कभी भी जैन शासन के प्रभावक नहीं माने जावेंगे।

भट्टारक परंपरा ने प्राचीन समय में बहुत काम किया हो, तो मैं मानता हूँ, वह कार्य उस समय रक्षा के लिये ठीक था। पर वह एक परम्परा, पंथ, मार्ग नहीं बन सकता। उसे एक आदर्श नहीं माना जा सकता। २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा था। उस समय मैं अजमेर में था। तब एक व्यक्ति ने आकर कहा- 'महाराज! विदेश में भी कुछ लोगों को, श्रमणों को जाना चाहिए। ताकि वहाँ के लोग भी श्रमण-परंपरा से अवगत हों।' मैंने कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे पीछे एक चर्या है। इस चर्या को आदर्श मानकर हम यत्र-तत्र विचरण करते हैं। जहाँ पर श्रावक नहीं हैं। आगम में कहा है- वहाँ पर न जाये। जहाँ पर उपसर्ग होते हों, कषाय उद्भूत होती हो- वहाँ पर न जायें। वीतरागता की उपासना करने में जहाँ पर श्रावक तल्लीन हो, वहाँ पर जायें। उस समय कई भट्टारक विदेश यात्रा करके आये। वहाँ उनसे पूछा गया था कि 'जैन साधु तो दिगम्बर होते हैं और आप तो वस्त्र में हैं।' प्रश्न का उत्तर दिया गया- 'हम श्रमण परंपरा के अंतिम साधु हैं।' अंतिम साधु के उत्तर पर मैंने कहा, अंतिम साधु कौन होता है? इसका भी कोई हल होना चाहिए। आचार्य कुंदकुंद के अनुसार तीन ही लिंग हैं- पहला श्रमण-दिगम्बर मुनि रुप, दूसरा श्रावक रुप ऐलक-क्षुल्लक, जिन्हें श्रावक शिरोमणी भी कह सकते हैं और तीसरा स्त्री समाज में आर्यिका का, उसी में श्राविकारुप क्षुल्लिका को भी रख सकते हैं। दिगम्बर जैन साहित्य में ये ही तीन लिंग हैं। क्षुल्लक-पद और वर्तमान में भट्टारक का पद एक समान माना जा रहा है, ये गलत है। क्षुल्लक एक स्थान पर रुक नहीं सकता है। वह मुनि के पास रहा करता है। मुनि महाराज, आचार्य महाराज जैसा कहते हैं उसके अनुसार वह अपनी वृत्ति रखता है। काल मान की अपेक्षा से कहीं एकादि रह गया हो, तो यह बात अलग है। उसे विधान नहीं माना जा सकता। आज के भट्टारक न मुनि हैं, न ऐलक हैं, न क्षुल्लक हैं। क्योंकि क्षुल्लक-पद के योग्य ग्यारह प्रतिमाएँ निर्धारित की गई हैं। इन भट्टारकों के पास कौन सी प्रतिमाएँ हैं, यह प्रश्न हमने उठाया? कुछ भी जवाब नहीं दिया गया। कुछ लोग कहते हैं कि आज भट्टारकों की बड़ी आवश्यकता है। हमने कहा १००८ भट्टारक बना लो। लेकिन उसका लिंग निर्धारित कर दो। वह आगम के अनुकूल होना चाहिए। नहीं तो उनके साथ समाचार करना, गलत व्यवहार हो जायेगा। यदि क्षुल्लक के रूप में व्यवहार होता है तो मार्ग दूषित हो जायेगा। समाज में विप्लव हो सकता है। हमारे पास संघ बहुत बड़ा है। उनके साथ कैसा व्यवहार, समाचार किया जाये? यदि ऐसा नहीं करते हैं तो जैनेतर लोग देखकर के हँसेंगे। एक मुद्रा है, एक आदर्श है, एक पद होता है, इसका निर्धारण करो। इस बात को किसी ने भी आज तक नहीं सुना। बड़ी-बड़ी, लम्बी-चौड़ी बातें तो होती हैं, लेकिन आगम के आधार पर नहीं होती हैं। महाराजों के पास बैठक रखी जाती है। अनेक प्रकार की बातें समाज में की जाती हैं। किंतु इस बारे में सोचा नहीं गया।

हमने कहा, तीन प्रमुख शीर्ष संस्थाएँ समाज की हैं। महासभा, महासमिति और परिषद्। यदि इस ओर इन्होंने नहीं देखा तो हम अपनी बात जनता अर्थात् (समाज) के सामने रख सकते हैं। तब एकमात्र (भारतवर्षीय नाम की) आप लोगों की उपाधि समाप्त हो जायेगी, ध्यान रखना। इसलिये कहीं भी एक मीटींग रख ली और स्वयं को भारतवर्षीय कहने लगे। भारतवर्षीय तो समाज है। आप समाज से कोई संस्था खड़ी करना चाहते हैं, तो वह आगम के लिये सम्मत प्रतिबद्ध होना चाहिए। आगम के बारे में कटिबद्ध होकर काम होना चाहिए। जैन-दर्शन से विपरीत चलेंगे, तो कौन इसका निर्वाह करेगा? एकता के बल पर देव, गुरु, शास्त्र की रक्षा के लिए तीनों समितियों को काम करना चाहिए। इनकी आपस में जितनी वैमनस्यताएँ हैं, उन्हें अपने अन्दर ही सीमित रखना चाहिए। उन्हें अखबार इत्यादि तक नहीं ले जाना चाहिये। दिगम्बरत्व तब ही सुरक्षित रह सकता है, अन्यथा सुरक्षित नहीं रह सकता। इसका कोई जवाब नहीं दिया गया। मठाधीश होने वाला क्षुल्लक नहीं होता। इन भट्टारकों से हमारा पूछना है कि क्या वे अपने आप को क्षुल्लक मानते हैं? नहीं मानते हैं, तो क्या ऐलक मानते हैं? नहीं मान सकते हैं, तो क्या मुनि मानते हैं? नहीं मान सकते, तो फिर पिच्छी हाथ में क्यों है?

यदि भट्टारक अपने आप को क्षुल्लक मानते हैं तो उन्हें आरंभ एवं परिग्रह की अनुमति नहीं दी जा सकती तथा वे मठ में भी नहीं रह सकते। उन्हें ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करना आवश्यक है। उन्हें आरंभ-सारंभ की तथा उद्दिष्ट भोजन की अनुमति नहीं है। महान दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में क्षुल्लक पद का स्परुप उल्लेखित किया है। वह मात्र चादर एवं लंगोटी ही अपने पास रखता है, पर वे भी फनाफन नहीं रहते। जो उदिद्ष्ट भोजन ग्रहण करता हो अथवा मठाधीश हो वह क्षुल्लक नहीं है। ऐसी दशा में वह ऐलक या मुनि भी नहीं है, तो फिर हाथ में पिच्छीका क्यों रखते हैं? जिन लिंग के संबंध में मूलाचार आदि अधिकांश ग्रंथ हमने पढ़े हैं। पिच्छी को श्रमण का लिंग, चिन्ह माना गया है। इस चिन्ह को लेकर स्वयं को क्षुल्लक रूप कहकर के यद्वा-तद्वा प्रचार करना जैन-दर्शन के लिये मान्य नहीं है। इन सब बातों को आप वर्षों से कैसे सुन रहे हैं? क्या कर रहे हैं? यह हमें समझ में नहीं आता। ड्रेस और एड्रेस मुख्य माने जाते हैं। शास्त्र में भी इसी प्रकार से मिलावट आने लग जाये, तो दिगम्बरत्व को कैसे सुरक्षित रखेंगे? केवल जय बोलने मात्र से दिगम्बरत्व सुरक्षित नहीं रहने वाला है। आपस के मनमुटाव को बंद करके सोचना चाहिये। यदि जैन-समाज नहीं सोचता है तो कई व्यक्तियों ने मेरे पास जो पत्र भेजे हैं, तब हम कह सकते हैं आप मेरे पास पत्र मत भेजा करो। पत्र भेजकर आप हमें अगुआ करना चाहते हैं। आप हमारी बात सुनते तक नहीं हैं। यह आप लोगों के लिये उचित नहीं लगता। अभी-अभी यहाँ भी कई पत्र आये थे। एक भट्टारक ने दिगम्बरत्व मुनि को भट्टारक बनाने का संकल्प लिया था। जब मालुम पड़ा तो बात वापस ले ली। क्यों ली बताओ? क्यों पीछे ली? क्या एक भट्टारक मुनि महाराज को भट्टारक बना सकता है? क्या एक वस्त्रधारी भट्टारक सीधे-सीधे क्षुल्लक बना सकता है? दीक्षा दे सकता है? क्या एक भट्टारक किसी को मुनि बनाकर के उसको क्षुल्लक बना सकता है? यह ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर किसी के पास नहीं हैं। न श्रीमान्जी के पास, न धीमान्जी के पास। धीमानजी के पास उत्तर तो हैं लेकिन वह डरते हैं। इनके कोई भी शास्त्रोक्त उत्तर नहीं मिलते। यदि कोई विद्वान् शास्त्रोक्त लिख भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देता है तो उसका मुख बंद कर दिया जाता है। हमें भी ऐसा कह दें कि आप इसके बारे में बोलिये नहीं। पर हम अवश्य बोलेंगे। आपको इस बारे में निर्णय करना होगा। यदि निर्णय नहीं किया जाता है तो हम समाज के सामने आव्हान कर सकते हैं क्योंकि इस प्रकार की परम्परा की कोई आवश्यकता नहीं है ?

कुछ समय के लिये क्षेत्रों इत्यादि के लिये व्यवस्था कर दी गई है। लेकिन पिच्छी के साथ कोई ट्रस्टी बन सकता है क्या ? क्या पिच्छी के साथ ताला-कूँची ले सकता है ? क्या पिच्छी के साथ बैंक बेलेंस रख सकता है ? क्या पिच्छी के साथ कोई खेती-बाड़ी कर सकता है ? आप लोगों को कोई आदर नहीं है। आप लोगों को श्रमण-परंपरा के प्रति क्या कोई आदर नहीं है ? आप लोगों को स्वाभिमान नहीं है ? क्या विद्वान् इस बात को नहीं जानते ? इस बात को उठाने से दबाया क्यों जाता है ? (इनडायरेक्ट) अप्रत्यक्ष क्यों जवाब दिया जाता है ?

वर्षों से हमने इस बात को इसलिये नहीं उठाई, जिस समय हमारे पास भट्टारकजी (भट्टारक चारुकीर्ति, श्रवणबेलगोला) आये थे, यह बात मढ़ियाजी (जबलपुर) की है, और उनके सम्मान करने की बात आ गयी। हमारे सान्निध्य की बात करके भट्टारकजी के सम्मान की बात करते हैं, तो मैं भट्टारक की व्याख्या करके रहूँगा और हमने भट्टारक की व्याख्या की है। उस व्याख्या को दुबारा करने की आवश्यकता नहीं है। यदि चाहें तो हम पुनः कर सकते हैं। उससे भी बढ़िया व्याख्या कर सकते हैं। अभी तक इस बात को आठ-दस साल हो गये, किसी भट्टारक ने गौर नहीं किया। क्योंकि उसके पीछे समर्थन है। आप समर्थन करना चाहते हैं तो करिये, लेकिन मार्ग को दूषित न करिये। अब हम इस बात को सहन नहीं कर सकते। कई व्यक्तियों ने इनडायरेक्ट बात की, जो गलत बात है।

गृहस्थ अलग और श्रमण-परंपरा अलग होती है। गृहस्थ की एक मर्यादा होती है। क्षेत्रों का रख रखाव, उन्नति, सुरक्षा आदि आवश्यक होते हैं। इस बात को तो हम मान्य करते हैं ऐसा आदर्श कार्य कोई भट्टारक करे तो उसे गृहस्थाचार्य बोला जा सकता है। उन्हें एक उपाधि दीजिये। उनके हाथ में पिच्छी अवैध है। बल्कि यूँ कहिये दिगम्बर समाज के लिये इसमें बहुत नीचा देखना पड़ता है। हम उसको कौन सा पद मानेंगे ? उनका पूरा का पूरा कार्य क्षुल्लकवत् चल रहा है। यह ठीक नहीं है। आपआगम को आदर दे दो। आपको सहर्ष स्वीकार करना चाहिये। भट्टारक लोग पढ़े लिखे हैं। कुछ डबल एम.ए.हैं। सब कुछ जानते हैं। वर्तमान में पाँच-पाँच, छः-छः भट्टारकों को दीक्षा दे दी गई है और इस सबका समर्थन किया गया है। लेकिन मैं इनका समर्थन नहीं करने वाला हूँ। और कोई समर्थन करना चाहे तो उनकी बात नहीं कह सकता। इसलिये की यह एक प्रकार से जैन-साहित्य, दर्शन, आचार-संहिता के लिये महादोष माना गया है। शैथिल्य अलग वस्तु और मार्ग-दूषण अलग वस्तु है। शैथिल्य किसी वजह से हो सकता है, जो किसी व्यक्ति तक सीमित रहता है। शैथिल्य विधान नहीं हो सकता। आज भट्टारक पद को वैधानिक रूप दिया जा रहा है और उसमें बहुत बड़े-बड़े सच्चे देव, गुरु एवं शास्त्र को मानने वाले ही उनकी रक्षा करने में जो लगे हैं, उनको सोचना चाहिए। शास्त्र का मार्ग तो उन्होंने बिल्कुल ही परिवर्तित कर दिया है। विद्वानों के बारे में मैं ज्यादा तो नहीं कह सकता। श्रीमानों के लिये भी में इतना कह सकता हूँ की वे जो मुझे पत्र भेजते हैं, उनको सोचना चाहिए। मुझे आगे करके वह क्या करना चाहते हैं ? मार्ग तो मार्ग माना जाता है। यदि शैथिल्य का कोप हो जाता है तो मार्ग दूषित हो जायेगा। उसे वैधानिक रूप नहीं दिया जा सकता। फिर उनका लिंग क्या हुआ ? उनकी व्यवस्था क्या होगी ? इन बातों को आप लोग जहाँ-कहीं भी जावेंगे, अवश्य रखेंगे। हम अपनी तरफ से इस बारे में अवश्य सोचेंगे और उसे मूर्त रूप देने का विचार करेंगे।

अभी-अभी हमें पढ़ने में आया है कि, दक्षिण भारत में भट्टारक परंपरा की आवश्यकता है, तो पिच्छी रखकर के (अलग करके) आप भट्टारक परंपरा चला सकते हैं, इसमें कोई बाधा नहीं है। इसे आदर्श के रूप में आप चला सकते हैं। लेकिन भट्टारकों को पिच्छी की आवश्यकता है, तो आपको (भट्टारकों) ग्यारह प्रतिमा का पालन करना होगा। यह ध्यान रखना जितने जितने व्यक्तियों को आपने दीक्षा दी है, दिलवायी है उनको भी ठीक, वैधानिक रूप में नहीं माना जा सकता। एक भट्टारक जो किसी पद पर नहीं है उसे पिच्छी दिलाने का किसी को कोई अधिकार नहीं है। पिच्छी श्रमण के पास यानी तीन लिंग के अलावा किसी के पास नहीं रह सकती। यह आचार्य कुंदकुंद भगवान को घोषणा २००० वर्ष पूर्व की है और आज उसकी आनाकानी की जा रही है। अन्य कोई व्यक्ति पूछता है, इसका रूप क्या है ? आप लोगों को बताना होगा। यह भी आपको ज्ञात नहीं है और आप लम्बी-चौड़ी बातें कर रहे हैं। समयसार की तो आप वाचना के लिये तैयार हैं किंतु यह ज्ञात नहीं है कि क्षुल्लक कौन होता है ? और भट्टारक का रूप क्या होता है ? अरहंत परमेष्ठी को भी भट्टारक कहा गया है। बड़े-बड़े आचार्यों को भी भट्टारक कहा गया है। भट्टारक पद इस ढंग से नहीं मिलता। वे श्रमणों में श्रमणोत्तम, प्रभावक होते थे। अन्य व्यक्तियों पर उनके वचनों का प्रभाव रहता था, उज्ज्वल चरित्र रहता था। उनके लिये भट्टारक उपाधि 'भटान पण्डितान् स्याद्वाद परीक्षणार्थं आरयति, प्रेरयति इति स भट्टारकः' होती थी। ऐसे मुनि महाराज की भट्टारक संज्ञा होती थी जो स्याद्वाद के माध्यम से, अनेकांत के माध्यम से, वस्तु तत्व को समझाने में माहिर रहते थे, उनको भट्टारक की उपाधि दी जाती थी। वे विद्वानों को चुनौती देते थे। जो जिनत्व स्वीकारता नहीं था, जिनत्व में कमी मानता था, उसके लिये वह प्रेरित करते थे कहते थे। हमारे से शास्त्रार्थ कर लीजिये। अनेकांत क्या है ? स्याद्वाद क्या है ? श्रमणत्व क्या है ? उसे सुनना और समझना हो, तो आईये मेरे सामने। वे इस प्रकार की खुली चुनौती देने वाले होते थे। वे वस्त्रधारी भट्टारक नहीं हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते थे, ध्यान रखना। लेकिन आज मुनियों के बराबर पद देकर उनको बहुमान मिल रहा है। ऐसा अंधविश्वास समाज में समझ नहीं आता। थोड़ा बहुत शास्त्र को अवश्य ही पढ़ना चाहिये। फिर बाद में इस प्रकार के समर्थन में खड़े होना चाहिए। यदि नहीं है, ऐसा ही करना है, तो हमारे पास नहीं आवें। इसका क्या इलाज है ? इसका क्या जवाब है ? सब जवाब तो आगम में विद्यमान हैं। आज महावीर भगवान के निर्वाण को हुए २५०० वर्ष पूर्ण हो गये हैं। आज तक जो ये श्रमण-परंपरा चली, यह उसी वीतराग परंपरा का प्रतीक है।

हम लोगों के लिये जो मार्ग मिला है वह भावपरक मार्ग है। जो किंचित् मात्र भी परिग्रह रखता है, वहाँ पर वीतरागता तीन काल में संभव नहीं है। महान् आचार्य कुंदकुंद की घोषणा है की वस्त्रधारी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वस्त्रधारी जो घर में तीर्थंकर जैसे भी रहते हैं, उनको मुक्ति नहीं मिलती। घर बसाने वालों को मुक्ति नहीं मिल सकती। घर बसाकर के छोड़ दें तो मुक्ति मिल जायेगी। यदि अपने नाम से कोई भी तिलतुस मात्र भी परिग्रह रखा तो मुक्ति नहीं मिल सकती। ऑनरशिप, स्वामीपन रखने से मुक्ती नहीं मिलेगी।आज तो सारा का सारा स्वामीपन रखा जा रहा है। इसकी यदि आवश्यकता है, तो आप रख लीजिये। क्षेत्रों का जीर्णोद्धार, रक्षा, नवनिर्माण आदि के लिये आवश्यकता होती है। यह सब पिच्छी के साथ न करिये।

कोई आशीर्वाद निर्देशन माँगता हो तो आप उन्हें उपदेश दे सकते हैं किंतु एक स्थान पर बैठकर मठाधीश बनना जैन धर्म के लिये उचित नहीं है। जैन समाज २५०० वर्षों से तन, मन एवं धन से क्षेत्र आदि की रक्षा करती आयी है।

यदि ऐसा नहीं करते तो यह श्रेय आप पर ही आवेगा की आपने सुरक्षा की अथवा बाधा पैदा की ? प्रत्येक व्यक्ति को इसका सर्मथन करने पर श्रेय आवेगा। लॉ पढ़ने से वह वकील बन सकता है। हाईकोर्ट आदि में वकालत कर सकता है परन्तु वह लॉ की किताब नहीं लिख सकता। जो किताबें लिखी हैं, उन्हें ही पढ़कर वकालत कर सकता है। किंतु उनमें संशोधन नहीं कर सकता। जज ही कर सकता है। वह जज वकील से कहते हैं कि तुम्हें मात्र वकालत करनी है, जजमेंट नहीं देना। आज तो हर व्यक्ति अपनी परंपरा बनाने में, ग्रंथ लिखने में लगा हुआ है। कुंदकुंद की बात करते, वह तो पर है। कुंदकुंद आचार्य ने तीन ही लिंग कहे हैं, उन्हें सुरक्षित रखना तो धर्म की रक्षा करना है, नहीं तो आपके कारण धर्म सुरक्षित नहीं रह पायेगा। इस पर समाज के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति, मूर्धन्य विद्वान तथा श्रीमान् मिलकर अवश्य ही विचार करेंगे। इस संबंध में प्रमाद करते हैं, तो मैं समझूँगा ये कोरी बातें हैं। बात को मूर्त रूप देना नहीं चाहते हैं। अब मैं इन बातों को सुनना नहीं चाहता। ये कुछ कहते नहीं, तो सन्देह का चिन्ह बन जाता है। अब तो कई लोग मुझ पर संदेह करने लगे हैं की महाराज! बताओ आप किसके समर्थक हो? इसलिये मैं कहना चाहूँगा कि, मेरा समर्थन तो केवल देव, शास्त्र, गुरु के लिये ही रहेगा। मुझे कोई श्रीमान् माने या ना माने, कोई मतलब नहीं। जिन-वाणी की सेवा करूँगा तथा जो प्रतिज्ञा आचार्य गुरुवर ज्ञानसागर जी महाराज से ली है, उस प्रतिज्ञा को जब तक इस शरीर में, घट में प्राण रहेंगे तब तक वीर प्रभु को याद करते हुए उसका निर्वाह करने के लिये मैं संकल्पित हूँ। भगवान से प्रार्थना करता हूँ की मेरा यह संकल्प जब तक प्राण रहे, जब तक जीवित रहूँ, तब तक इस भोली जनता, जैन समाज को बता सकूँ। जैन-धर्म में विकार सहनीय नहीं है। जिस प्रकार शरीर में रोग सहनीय नहीं होता, उसी प्रकार धर्म-मार्ग में दूषण इस आत्मा को सहन नहीं होता।

लालनात् बहवो दोषाः, ताडनात् बहवो गुणाः।
तस्मात् पुत्रंचि शिष्यंचि, ताडयेद् न तु लालयेत॥

यह नीति है। इसके अनुसार पुत्र तथा शिष्यों को लालित करते या अधिक लाड़-प्यार करते हैं तो हम ही उसे दोषों का भण्डार बना रहे हैं। यदि उन्हें ताड़ते हैं तो अवगुण दूर होंगे तथा वे गुणी बनेंगे।

हमने जो दिशा ली है, उसी दिशा में जिस ओर महावीर भगवान के कदम उठे हैं, उसी ओर हम अपने कदम बढ़ाना चाहेंगे। यही बात दूसरों के लिये भी संकल्प पूर्वक कहना चाहते हैं। आप यदि अपने को महावीर भगवान की संतान या उनका समर्थक मानते हो, तो ध्यान रखना अभी इस गाड़ी को बहुत आगे बढ़ाना है। यदि आप आगे नहीं बढ़ाते हैं तो आपकी आने वाली पीढ़ी कहेगी कि हमारे बाप दादाओं ने हमारे लिये धर्म-कर्म नहीं सिखाया। यदि सिखाया है, तो भट्टारकों को ही मुनि मानो, यह सिखाया है, यह बात गलत हो जायेगी। आज हमारे सामने जो जवान-जवान युवक गुरुकुल मढ़ियाजी (जबलपुर) में पढ़कर के गये हैं, हमसे आशीर्वाद प्राप्त किया है, उन चारों को भट्टारक बनाया गया है। हमें इस बात का खेद है कि हमने भट्टारक बनाने के लिये आशीर्वाद नहीं दिया था। समाज का पैसा लगाकर, समय निकालकर प्रोत्साहित करके उन्हें बनाया। आज उनको भट्टारक बनाकर प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। यह सही परंपरा नहीं है। विद्वानों को भी सोचना चाहिए की भट्टारक बनाने के लिये इन लोगों को नहीं पढ़ाया था। जैन धर्म की प्रभावना के लिये पढ़ाया गया है। यह बात इसलिये आज मैं कह रहा हूँ कि आज चातुर्मास का निष्ठापन हो चुका है। अब हमारा कहीं भी विहार हो सकता है। आप इन्दौर में ही रहेंगे और हमें इन्दौर में रहना है ही नहीं। परिग्रह के साथ जो धर्म की प्रभावना करना चाहते हैं, वे घर में रह करके करें, किंतु हाथ में पिच्छी लेकर के और परिग्रह रखकर के चलें, यह उसकी (पिच्छी की) शोभा नहीं है। मयूर-पिच्छी की कीमत, मूल्य गरिमा बनाये रखने के लिये मैं आप लोगों से कह रहा हूँ।

प्रस्तुति : निर्मल कुमार पाटोदी,
२२, जाय बिल्डर्स कॉलोनी, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श गुरु के आदर्शमयी शिष्य : मुनि श्री प्रवचनसागर जी

मुनि श्री अजितसागर जी

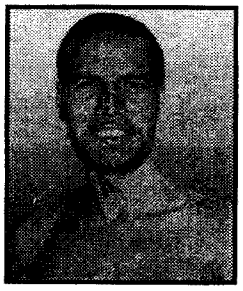

जिन्दगी का सफर चलता है और जीव इस सफर का यात्री बन करके अपनी यात्रा प्रारंभ करता है। यात्रा करने वाले जीव का अपना एक उद्देश्य होता है। कुछ जीव अपने सफर को अच्छे से जान पहचान करके और अपने मानस को अच्छे से तैयार करके प्रारंभ करते हैं। उनका उद्देश्य सिर्फ उपादेय तत्त्व को पाना ही एक मात्र लक्ष्य होता है। ऐसे ही एक व्यक्ति के बारे में कुछ लिखना चाह रहा हूँ। वह एक साधक ही नहीं,वह तो उपादेय तत्व को पाने के लिए उसका आराधक था। उसने अपना ध्येय उपादेय के स्वरूप अपने देव, शास्त्र और गुरु को बनाया। देव की आराधना, शास्त्र की उपासना के साथ उसके अनुसार चलना प्रारंभ किया और गुरुभक्ति में सदा तत्पर रहने वाला था। इस पंचम काल में साधना के मार्ग पर चलने के लिए गुरु ही सही मार्ग दृष्टा होता है। सही गुरु का मिलना बहुत कठिन होता है। इस काल में सच्चे गुरु का सहारा मिल जाना बहुत कठिन है। जिस साधक को सच्चे गुरु का सहारा मिल गया वह बड़ा सौभाग्यशाली है। और जिसके ऊपर ऐसे वीतरागी परम गुरु की कृपा हो जाये वह परम सौभाग्यशाली है। भौतिकता की चकाचौंध का जहाँ चारों तरफ वातावरण बना हो, ऐसे समय में हम लोगों को आचार्य कुन्द-कुन्द आदि के समान, जीवन्त मूलाचार के स्वरूप, आज के जन-जन के आदर्श गुरु संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी परम गुरुदेव के आशीर्वाद का सहारा जिन्हें मिल गया हो वह साधक भटक नहीं सकता, वह कहीं पर हो संकेत मात्र से अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाता है।

मैं ऐसे गुरु के एक साधक के बारे में लिखने जा रहा हूँ, जिसे आचार्य गुरुदेव ने संवारा था, मोक्षमार्ग में लगाया था, ऐसे हम सभी साधर्मियों के आदर्श परमपूज्य मुनि श्री प्रवचनसागर जी महाराज परम सौभाग्यशाली थे, जिन्होंने परमपूज्य आचार्य श्री के परम सान्निध्य में सब कुछ पाया और साधना के मार्ग को प्राप्त करके आदर्श शिष्य बनकर अपनी चर्या आचार्य श्री के अनुसार बनाकर अपने लक्ष्य को पाया। पूज्य आचार्य श्री हमेशा अपने शिष्य समुदाय को कहते रहते हैं, 'साधना के मार्ग में सांसारिक उपासना की बात नहीं करना और अपने आपको जिनमार्ग पर लगाये रखना। इस मार्ग में प्रभु की आराधना और जिनवाणी के अनुसार चलने के लिए उसकी उपासना करते रहना चाहिए। साधक के लिए श्री और स्त्री दोनों से दूर रहना चाहिए। जो श्री की उपासना में लगा, उस ओर अपना उपयोग ले गया, बस वहीं से शिथिलाचार का आचरण प्रारंभ हो गया, इसलिए इन दोनों से बचकर रहने वाला ही साधना के मार्ग का निर्दोष साधक बन सकता है।' ऐसे गुरुदेव की बात को आत्मसात करने वाले मुनि श्री प्रवचनसागर जी का पूरा साधना काल था। मुनि श्री प्रवचनसागर जी तो एक आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य बनकर रहे। गुरु को ही अपने जीवन का आदर्श बनाया। हम लोगों के बीच में एक दर्पण की भांति रहे, जिन्हें हम देखकर एक नई प्रेरणा और ऊर्जा शक्ति को पाते थे। उनके व्यक्तित्व को देखकर हम सब को एक दिशा प्राप्त होती थी। आज जब वो हमारे बीच में नहीं तब भी प्रेरणा के प्रकाश पुंज बन कर गये और यह कहकर गये हर समय सावधान रहो, तुम्हारी साधना की परीक्षा कभी भी हो सकती है, इसलिए गुरुदेव के दिये हुए सूत्रों को सदा याद रखो, आगम को अपनी चर्या में रखो, यह तुम्हें सफलता के शिखर पर पहुँचाने वाले हैं। परम पूज्य आचार्य श्री कहा करते हैं- 'देखो हम लोगों को सदा याद रखना चाहिए कि जिस समय हमने व्रतों को स्वीकारा था, उसी समय तुम्हारा एक लक्ष्य था, कि मुझे इस जीवन का उपसंहार समाधिमरण पूर्वक करना है, इसलिए हमें सदा तैयार रहना चाहिए, डरना नहीं चाहिए।' परमपूज्य मुनिश्री ने गुरुदेव के इस संदेश को साकार करके दिखाया अपनी आकस्मिक परीक्षा में सफल होकर दिखलाया। उन्होंने मौन संकेत में यही कहा कोई भरोसा नहीं कि जीवन के अन्त में ही समाधिमरण का अवसर आये? उनकी सावधान वृत्ति, जागृति ने हम सबको सावधान किया है। यह तो संयोग ही उनका था एक कुत्ता का काटना और असातकर्म की तीव्र उदीरणा का होना। बाह्य संयोग बहुत जुटाये पर कर्म का उदय ऐसा था कि उन सबने काम नहीं किया। पर मेरा ऐसा दुर्भाग्य रहा, ऐसे समय, मैं उनसे दूर, पथरिया में, गुरुदेव की आज्ञा से चातुर्मास कर रहा था। सुना की अमरकंटक में मुनिश्री को कुत्ते ने काटा है। लोगों ने बताया उपचार हो गया है चिन्ता की कोई बात नहीं है। मैंने मुनिश्री जी को पत्र के द्वारा समाचार माँगा, उन्होंने सिर्फ इतना ही लिखा, 'चिन्ता की कोई बात नहीं आचार्य श्री के आशीर्वाद से मैं पूर्णरुप से स्वस्थ्य हो गया हूँ। संघ के सभी साधकगण देखरेख में लगे हुए हैं, आप अपना ध्यान रखना और धर्म की प्रभावना करना' ये शब्द हमारे लिए प्रेरणा के रुप में आज बस स्मृति के रुप में हैं, पर यह साधक हमारे बीच से चला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया, पर मन अब भी नहीं मानता कि वह चला गया है।

अमरकंटक चातुर्मास में मुनि श्री निर्णयसागर जी का स्वास्थ्य खराब है, यह समाचार हम लोगों को मिला और सुना कि गले में 'थाराराइट' हो गया है, इससे बुखार प्राय: पूरे चातुर्मास भर चला। गुरुदेव आचार्य श्री ने मुनि श्री निर्णयसागरजी एवं मुनिश्री प्रवचनसागर जी दोनों महाराजों का संघ बनाकर कटनी की ओर जाने को कहा। और १३ नवम्बर २००३ को दोपहर में आचार्य श्री ने संघ सहित पेंड्रा की ओर विहार किया। दोनों महाराजों को बुढ़ार, शहडोल होकर कटनी जाने का संकेत दिया। मैंने सुना कि जब आचार्य श्री से पृथक होते समय मुनि श्री प्रवचनसागर जी ने आचार्य श्री के चरणों में सिर रखा और गुरु वियोग के दु:ख में आँखें नम हो गईं और उन्होंने कहा- 'गुरुदेव आपकी कृपा दृष्टि बनी रहे।' पता नहीं उनका रोना सबको एक आश्चर्यप्रद लग रहा था। मैंने जब पथरिया में सुना तो मुझे अपना वह प्रसंग याद आ गया जब मुझे और ऐलक श्री निर्भयसागर जी दोनों महाराजों को १४ मई २००२ की प्रात: काल सिद्धोदय सिद्ध क्षेत्र नेमावर से हरदा के लिये भेजा था। मैं श्री गुरुदेव से पृथक् होने के दु:ख से बहुत रोया था। हमने कभी सोचा नहीं था हमें संघ से पृथक होना पढ़ेगा, लेकिन शरीर व्याधियों का मंदिर है और असाता कर्मोदय से इस शरीर में ऐसी व्याधि हो गई जिससे जाना अनिवार्य हो गया था। तन से जा रहा था, पर मन जाने को तैयार नहीं हो रहा था, उस समय बहुत रोना आया, मैं उस समय रोते हुए आचार्य वंदना कर चला, आँखों के आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। पूरा संघ हमें छोड़ने आया तभी मुनि श्री प्रवचन सागर जी ने मुझे हँसाने के लिये कहा- 'अरे! अजितसागर जी मुझे तो आश्चर्य हो रहा, जो हम सबको हँसाता रहता है, तुम तो रोते व्यक्ति को हँसा देते हो, आज तुम रो रहे हो'। मैंने उससमय मुनि श्री जी से सिर्फ इतना कहा था- 'जिससमय आपके सामने यह स्थिति आयेगी तब आप भी ऐसे ही रोओगे।' और में सबसे विदा होकर हरदा की ओर चल दिया। मुझे जब ज्ञात हुआ कि मुनि श्री प्रवचनसागर जी बहुत रोये, तब मुझे अपनी बात याद आ गई, पर यह ज्ञात नहीं कर सका यह उनकी गुरुदेव के अन्तिम दर्शन की पीड़ा है, इसलिए कहा था कि - 'गुरुदेव कृपा दृष्टि बनाये रखना' और बुढ़ार की ओर विहार किया।

हम दोनों महाराज (मुनि अजितसागर, ऐलक निर्भयसागर) ने पथरिया चातुर्मास में सुना, दोनों महाराजों का संघ बन गया, सोचा चलो दोनों महाराज मिलकर धर्मप्रभावना करेंगे। इधर हम दोनों महाराजों ने पथरिया से विहार करके सिद्ध क्षेत्र नैनागिरी जी की वंदना करके बण्डा होते हुए मकरोनिया सागर में थे। तभी डाक्टर अमरनाथ जी सागर आये, बोले 'महाराज कटनी में मुनिश्री निर्णयसागर जी, प्रवचनसागर जी आ गये हैं। हमें बुलाया है, मुनि श्री प्रवचनसागर जी का स्वास्थ्य खराब है।' मैंने उनसे कहा-'नहीं मुनि श्री निर्णयसागर जी का होगा।' उसने तुरन्त मोबाइल से कटनी बात की और बताया, 'नहीं मुनि श्री प्रवचनसागर जी का ही स्वास्थ्य खराब है, शौच नहीं हुई, आहार लिया नहीं जा रहा है, गैस बन रही है। रात्रि की ट्रेन से हम जा रहे हैं।' कुछ उपचार के बारे में बताया, दोनों महाराजों को, हम दोनों का नमोस्तु कहना और कैसा क्या है, समाचार देना? २७ दिसम्बर २००३ की प्रात:काल कटनी से समाचार आया थोड़ा स्वास्थ्य में सुधार है। लेकिन दोपहर में हम दोनों महाराज मकरोनिया से चलकर सागर शहर में प्रवेश करके बाहुबली कॉलोनी पहुँचे। कुछ समय बाद श्री मुन्नालाल जी डीलक्स पेट्रोल पंप वाले आये, बोले, 'महाराज! डॉ. अमरनाथ जी का कटनी से फोन आया कि मुनि श्री प्रवचनसागर जी को 'रेबीज' हो गया है।' मैंने कहा, 'यह कौन सी बीमारी है, हमने इसका नाम पहली बार सुना है?' तो मुन्नालाल जी ने कहा, 'जब किसी को कुत्ता काट लेता है, यदि सही उपचार न हो तो ऐसी बीमारी होती है। और अब तो महाराज की आयु ज्यादा से ज्यादा ३-४ दिन ही शेष है, ऐसा डाक्टर ने कहा है।' हमने जैसे ये सुना तो अवाक् रह गया। मुन्ना से कहा- 'क्या कहते हो?' 'हाँ महाराज! रेबीज वाली बीमारी ही ऐसी है,' ऐसा मुन्ना ने हमसे कहा। मन उदास हो गया, कुछ समझ में नहीं आ रहा था, मैंने फिर कहा, 'इसका उपचार नहीं है क्या?' बोला, 'ऐसी स्थिति वाले का उपचार नहीं है। अब कोई चमत्कार हो जाये तो अलग बात है।' यह चर्चा चलती रही, इतने में ब्रह्मचारी दरबारीलाल जी आ गये। हम दोनों महाराज ने चर्चा की कुछ लोग और बैठे, तभी किसी बहिन ने सुना होगा। उसने अपने घर जाकर अपने पिताजी से कहा होगा- 'किसी महाराज को कुत्ते के काटने से रेबीज हो गया।' हम दोनों महाराज शाम को आचार्य भक्ति के बाद बैठे तभी वे सज्जन आये बोले- 'महाराज कुछ बात करना है।' हमने कहा, 'हाँ बोलो।' उन्होंने कहा- 'अभी हमारी बेटी घर गई उसने बताया किसी को 'रेबीज' हो गया है।' हमने कहा, 'हाँ एक महाराज को हो गया है।' 'कहाँ पर हैं वो?' हमने कहा- 'क्यों? कोई उपचार है आपके पास?' उन्होंने जेब से एक पालीथिन निकाली उसमें एक पुड़िया थी। 'यह दवाई है, हमारा एक भतीजा था- उसको भी 'रेबीज' हो गया था तो यह दवाई सागर में शनीचरी में एक वृद्ध महिला थी, वह दवाई देती थी, भतीजा ठीक हो गया है वह आज भी है।' मैंने कहा, 'तुरंत जाओ वह वृद्ध महिला है कि नहीं।' पता किया उसका पुत्र उसके साथ आया, उसने कहा- 'माँ का तो स्वर्गवास हो गया पर दवाई हमारे पास है इसे गुड़ में देना पढ़ेगी।' मैंने कहा- 'आप स्वयं दवा लेकर कटनी चले जाओ साथ में आपके साथ - ये ऋषभ जैन गढ़ाकोटावाले एवं अजय जैन लाटरी वाले जा रहे हैं। १० बजे ट्रेन है उससे आपको जाना है, सुबह पहुँच जाओगे।' वह तैयार हो गया। हमने मुनिश्री निर्णयसागर आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाराजों को लिखा - औषधि लाने वाले के बारे में लिख भेज दिया।

प्रात:काल कटनी से समाचार आया औषधि प्रात:काल ८ बजे दी गई है। मात्र दवा और थोड़ा सा पानी ही लिया गया है। १० बजे समाचार आया लघुशंका हुई, स्वास्थ्य अच्छा सा लग रहा है। इस दवाई की शर्त थी कि यदि लघुशंका हो जाती है तो वह काम कर रही है। समाचार था- महाराज में नई चेतना सी आई है। पर यह चेतना अपने भीतर से जागृत होने की थी, सावधानी की थी। हम दोनों महाराज आहारचर्या को उठ गये। लेकिन जैसे ही आहारचर्या करके ११.३० बजे आया जो समाचार मिला वह बहुत दु:खद् था- बताया, 'महाराज श्री प्रवचनसागर जी की समाधि हो गई,' अपने आपको रोक नहीं पाया और आँखों से आँसू आ गये, ऐसा लगा जैसे वज्राघात हो गया हो। जाकर एकांत में बैठ गया और पुरानी स्मृतियों को स्मरण करने लगा।

मैं सामायिक में बैठ गया पर प्रवचनसागर जी की पुरानी स्मृतियाँ हमारे चारों ओर जिनमें से एक वह स्मृति है- जिस व्यक्ति ने कभी भी अपने आवश्यकों में शिथिलता से कभी भी समझौता नहीं किया। नवम्बर-दिसम्बर सन् १९९५ की बात है, हम उस समय ब्रह्मचारी विनोद की पर्याय में और महाराज श्री ब्र. चंद्रशेखर जी के रुप में थे। मैं और ब्र. अशोक, ब्र. अभय तीनों को आचार्य श्री से आशीर्वाद लेकर तारंगा जी में इन्द्रध्वज महामंडल विधान कराने जाना था। हम लोग सनावद जिला-खरगोन से आचार्य श्री से आशीर्वाद लेकर इन्दौर आ गये। यहाँ से दूसरे दिन शाम ४-५ बजे करीब बस के द्वारा अहमदाबाद जाना था। मैंने रात्रि में ब्रम्हचारी चंद्रशेखर जी से कहा, 'भैयाजी ! हमने मक्सीजी क्षेत्र के दर्शन नहीं किये प्रात:काल के समय आप हमें वहाँ के दर्शन करा दो।' उन्होंने कहा, 'ठीक है। पर कितने बजे चलना है ?' हमने कहा, 'सुबह ६ बजे चलें।' उन्होंने तुरन्त कहा, 'तुम लोग चले जाओ, हम तो ६.३० बजे के पहले नहीं जा सकते हैं।' मैंने कहा, 'नहीं आपको चलना पढ़ेगा,' 'ठीक है ६.३० बजे चलेंगे।' तभी एक ब्र. भाई ने कहा, '६ बजे क्यों नहीं चलोगे ?' उन्होंने सीधा कहा, 'हमारे पाठ आदि पूरे नहीं होते हैं, पूरे करके ही चलूँगा।' उन्होंने कहा, 'गाड़ी में बैठकर पूरे कर लेना।' उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, 'अभी गाड़ी में बैठकर पाठ करना, फिर पूजा करने लगना। धीरे-धीरे आगे जाकर गाड़ी में बैठे-बैठे भोजन भी करने लगना।' ब्रह्मचारी जी मौन रहे उत्तर नहीं दे सके। ऐसे ब्रम्हचारी अवस्था में उनकी आवश्यकों के प्रति सदा तत्परता रहती थी। उदासीन आश्रम इंदौर के अधिष्ठाता के पद पर रहते हुए उन्होंने कभी अपने आवश्यकों में शिथिलता नहीं आने दी। पूरे आश्रम को अच्छे अनुशासन में रखते हुए स्वयं अनुशासित होकर रहते हैं। पूज्य गुरुदेव के प्रत्येक संकेत को अपने पास रखते थे।

पूज्य आचार्य श्री की प्रत्येक आज्ञा निर्देश में चलने वाले ब्र. चन्द्रशेखर जी आश्रम के अधिष्ठाता जैसे पद पर रहकर कभी बड़ेपन की बात नहीं की। इसी का परिणाम था कि पूज्य आचार्य श्री ने विनयशील ब्र. चन्द्रशेखर जी को २० अप्रैल १९९६ अक्षय तृतीया के दिन तारंगाजी में हम सभी सात ब्रम्हचारी क्रमश: ब्र. विनोदजी, ब्र. प्रदीपजी, ब्र. स्वतंत्रजी, ब्र. चद्रशेखरजी, ब्र. शांतिकुमार जी, ब्र. पायप्याजी, ब्र. मनोजजी इस प्रकार क्रमश: सातों जनों को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की, जिनका नाम क्रमश: क्षु. प्रज्ञासागर, क्षु. प्रबुद्धसागर, क्षु. प्रशस्तसागर, क्षु. प्रवचनसागर, क्षु. पुण्यसागर, क्षु. पायसागर, क्षु. प्रभावसागर नाम रखे। जिनमें मुनि श्री का चौथा नम्बर था। उनकी ऐलक दीक्षा १९ दिसम्बर १९९६ गिरनार जी सिद्ध क्षेत्र में पांचवी टोंक पर हुई। पर मेरी ऐलक दीक्षा नहीं हो सकी उन्हें बड़ा विकल्प रहा, पर सर्दी के कारण में साहस नहीं कर सका। मैं छोटा हो गया उन्हें बड़ा विकल्प रहता था। आगे चलकर १६ अक्टूबर १९९७ शरद पूर्णिमा को नेमावर चातुर्मास में उनकी मुनि दीक्षा हो गई। उस समय भी उन्होंने हमसे कहा पर उस समय शारीरिक अस्वस्थ्यता एवं कुछ नियम के कारण में साहस नहीं कर पाया। आगे चलकर मेरी इसी नेमावर में ग्रीष्मकालीन प्रवास २२ अप्रैल १९९९ गुरुवर को हम २३ महाराजों की मुनि दीक्षा हुई। हम दीक्षा में उनसे १८ माह २२ दिन छोटे थे। पर वे हमेशा कहते, 'हमारे बड़े महाराज तो आप हैं।' मुझसे आयु में बड़े होने और दीक्षा में बड़े होने पर अपने आपको छोटा कहते थे। पर मैं तो बड़ा मानता था और वे थे ही। पर उन्होंने अपने आपको कभी बड़ा नहीं माना। एक संस्मरण है-

मैं आचार्य श्री से पृथक होकर प्रथम बार हरदा में ग्रीष्मकाल करके नेमावर आया, सभी महाराज लोग मुझे लेने आये, मैंने सभी के चरणस्पर्श किये जैसे ही इनकी ओर झुका हाथ पकड़ लिये पैर नहीं छूने दिये। आचार्य श्री के पास ३-४ दिन रहा। गुरुदेव का संकेत था तुम्हें और ऐलक जी को बैरसिया (भोपाल) चातुर्मास को जाना है। फिर नेमावर से विहार हुआ सभी महाराज लोग छोड़ने आये, सभी अग्रज मुनियों के चरणस्पर्श पूर्वक नमोस्तु किया। मुनि श्री प्रवचनसागर जी के जैसे करने लगा तो फिर हाथ पकड़ लिये, बोले, 'बड़े महाराज से हम चरण स्पर्श नहीं कराते।' हमने बहुत प्रयास किया, समझाया, 'बड़े तो आप हैं' लेकिन अंत में मुझे बिना चरण छुए जाना पढ़ा। ऐसे महान गुणों से सम्पन्न महान साधक हम सबके आदर्श महानता की महामूर्ति के बारे में जितना लिखो बहुत कम है। आज हमारे बीच में नहीं हैं। अपने चरम लक्ष्य को विकट परिस्थिति के समय में सावधान रहकर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया, ऐसे महान साधक के चरणों में बारम्बार अपने आपको नतमस्तक करता हूँ, नमन करता हूँ और अपने प्रभु और अपने गुरु से यही भावना करता हूँ कि जैसे हमारे अपने साधर्मी ने अपने लक्ष्य को प्राप्त किया वैसे हम भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करें, इसी भावना के साथ कलम को विराम देता हूँ....।

ओम शांति!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतांक से आगे

जैन धर्म में अहिंसा की व्याख्या

स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया

आत्मा और शरीर को सर्वथा भिन्न या अभिन्न मानने से तो हिंसा और अहिंसा दोनों ही नहीं बन सकेंगी। जैसा कि कहा है-

आत्मशरीरविभेदं वदंति ये सर्वथा गतविवेकाः।
कायवधे हंत कथं तेषां संजायते हिंसा॥
जीववपुषोरभेदो येषामैकांतिको मतः शास्त्रम्।
कायविनाशे तेषां जीवविनाशः कथं वार्यः॥

अर्थ : जो अविवेकी आत्मा और शरीर में सर्वथा भेद बताते हैं, खेद है कि उनके यहाँ शरीर के घात से हिंसा कैसे हो सकेगी। इसी तरह जिनके यहाँ आत्मा और शरीर में एकांतत: अभेद माना गया है उनके यहाँ शरीर के नाश होने पर आत्मा का भी नाश हो जावेगा इस आपत्ति का निवारण कैसे हो सकेगा। अर्थात् आत्मा और शरीर में सर्वथा भेद मानने से किसी के शरीर का घात करने से आत्मा को कुछ भी आघात नहीं पहुँचेगा तो हिंसा नाम की कोई चीज ही दुनिया में न रहेगी तब हिंसा के त्याग का उपदेश भी कोई क्यों देगा? तथा आत्मा और शीरर का सर्वथा अभेद माना जावे तो शरीर के घात से आत्मा का भी घात हो जावेगा। इस तरह जीव का नाश मानने से दयापालनादि धर्माचरण भी व्यर्थ हो जावेगा। जब आत्मा नहीं तो परलोक भी न रहेगा।

सत्य तो यह है कि जैसे अग्नि से तप्त लोहे पर चोट देने से लोहे के साथ मिली हुई अग्नि पर भी आघात पहुँचता है, उसी तरह किसी के शरीर पर आघात पहुँचाने से उसके साथ मिले हुये आत्मा को भी बड़ी पीड़ा होती है इस पीड़ा ही का नाम हिंसा है। क्योंकि जीव के शरीर, इन्द्रिय, श्वास आदि द्रव्य प्राण हैं इन्हीं से आत्मा प्रत्येक पर्याय में जीता है। इन द्रव्य प्राणों का वियोग ही लौकिक में मरण कहलाता है। 'नहि मृत्युसमं दुःखं' मृत्यु का दुःख जीवों के सबसे बड़ा दुःख है। मरणांत दुःख देने वाले जीव घोर पातकी, महानिर्दयी, क्रूरपरिणामी होते हैं। जहाँ क्रूरता है वहीं हिंसा है- अधर्म है। दया के बिना धर्म नहीं हो सकता है। कहा भी है कि-

यस्य जीवदया नास्ति तस्य सच्चरितं कुतः।
न हि भूतद्रुहां कापि क्रिया श्रेयस्करी भवेत्॥

अर्थ- जिसके जीवदया नहीं है उसके समीचीन चारित्र कैसे हो सकता है? क्योंकि प्राणियों के साथ द्रोह करने वालों का कोई भी काम कल्याण का करने वाला है।

दयालोरव्रतस्यापि स्वर्गतिः स्याददुर्गतिः।
व्रतिनोऽपि दयोनस्य दुर्गतिः स्याददुगतिः॥

अर्थ - दयालु पुरुष यदि व्रताचरण नहीं भी करता है तो भी उसके लिये स्वर्गगति मुश्किल नहीं है। और जो व्रतों का पालन करता है किन्तु हृदय में दया नहीं है तो उसके लिये नरकादि दुर्गति भी सुलभ है।

तपस्यतु चिरं तोव्रं व्रतयत्वतियच्छतु।
निर्दयस्तत्फलैर्हीनः घीनश्चैकां दयां चरन॥

अर्थ- चाहे कोई चिरकाल तक घोर तपस्या करें, व्रत पाले और दान देवे, यदि दया नहीं हो तो उनका कोई फल मिलने वाला नहीं है। और एक दया है तो उनका बहुत फल है।

मनो दयानुविद्धं चेन मुधा क्लिश्नासि सिद्धये।
मनोऽदयानुविद्धं चेन मुधा क्लिश्नासि सिद्धये॥

अर्थ- अगर दया से भीगा हुआ मन है तो सिद्धि के लिये क्लेश उठाने की जरूरत नहीं है क्योंकि दयालु को सिद्धि प्राप्त कर लेना सुगम है। और जो दया से भीगा हुआ मन नहीं है तो उसको भी सिद्धि के लिये क्लेश उठाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि निर्दयी को कभी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है। प्रसिद्ध संत कवि तुलसीदासजी ने भी कहा है कि 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।' वेद व्यास ने भी सारे पुराणों का सार २ शब्दों में इस प्रकार बताया है- अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयं। परोपकारः पुण्णाय पापाय परपीडनम्॥ (अर्थात् १८ पुराणों का सार यह है कि परोपकार ही पुण्य है और परपीडन = हिंसा ही पाप है।

सर्वेषां समयानां हृदय गर्भश्च सर्वशास्त्राणाम्।
व्रत्तगुणशीलादीनां पिंडः सारोपि चाहिंसा॥

अर्थ- सब मतों का हृदय और सब शास्त्रों का गर्भ तथा व्रत गुण-शीलादिकों की पिंड ऐसी सारभूत एक अहिंसा ही है।

यद्यपि जैन दर्शन में किसी को दुःख देना पाप बताया है। किन्तु इसमें भी इतना और विशेष समझ लेना चाहिए कि यदि कर्त्ता के कषायभाव हो तो पाप हो सकता है। अगर कषाय भाव नहीं है तो अपने या दूसरे को पीड़ा देने मात्र से पाप नहीं होता है। क्योंकि डाक्टर भी आपरेशन करके रोगी को पीड़ा तो पहुँचाता ही है। गुरु भी शिष्य की ताड़ना करता है। किन्तु ऐसा करते हुये भी इनको पाप नहीं लगता है। क्योंकि इनके भाव अहित करने के नहीं हैं अतः इनके कषायभाव नहीं है। जीवहिंसा ही नहीं अन्य पाप भी भावों पर ही निर्भर हैं। यथा-

मनसैव कृतं पापं न शरीरकृतं कृतम्।
येनैवालिंगिता कांता तेनैवालिंगिता सुता॥

अर्थ- मानसिक परिणामों से किया हुआ ही पाप माना जाता है। बिना मन के केवल शरीर के द्वारा किया हुआ पाप नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माना जाता है। क्योंकि जिस शरीर से अपनी स्त्री का आलिंगन किया जाता है उसी से अपनी पुत्री का भी आलिंगन किया जाता है। किन्तु दोनों क्रियायें बाहर से एक समान होते हुए भी भीतर भावों का बड़ा अन्तर रहता हैं।

इसी तरह का एक और पद्य है-

सर्वासामेव शुद्धीनां भावशुद्धिः प्रशस्यते।
अन्यथालिंग्यतेऽपत्यमन्यथालिंग्यते पतिः॥

अर्थ- सब शुद्धियों में भावशुद्धि प्रधान है। एक महिला पुत्र को भी छाती से लगाती है और पति को भी। किन्तु जिस भाव से पुत्र को लगाती है उस भाव से पति को नहीं।

इस प्रकार हिंसा अहिंसा के मसले को समझने के लिये जैन शास्त्रों में बहुत ही गम्भीर विचार किया गया है।

अहिंसा परमो धर्मःयतो धर्मस्ततोजयः।
अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमागति॥
अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।
(पातंजापयोगदर्शन)
'अप्रादुर्भाव खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति'
(अमृत चंद्र)

'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार

सिद्धक्षेत्र गिरनार पर सौहार्द : एक अभूतपूर्व उपलब्धि

डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'

परमपूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य पूज्य मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज की सफल गिरनार यात्रा के जो सुखद परिणाम सामने आये और सौहार्दपूर्ण वातावरण बना, उससे सम्पूर्ण जैन समाज में प्रसन्नता की लहर फैलना स्वभाविक है। क्योंकि इस पवित्र सिद्धक्षेत्र से सम्पूर्ण जैन समाज की गहरी आस्थाएँ प्राचीन काल से ही जुड़ी हैं। इधर अनेक वर्षों से जैन तीर्थयात्रियों को वन्दना करते समय जो आस्थाएँ आहत हो रही थीं, उससे कुछ-कुछ हताशा और निराशा की स्थिति बन रही थी।

पूज्य मुनिश्री के केकड़ी चातुर्मास में अक्टूबर २००३में 'पद्मपुराण' पर सम्पन्न राष्ट्रीय संगोष्ठी के बाद मुझे सपरिवार सिद्धक्षेत्र गिरनार जी की वन्दना का सौभाग्य मिला। इस सिद्धक्षेत्र की वन्दना को तीस वर्ष बाद मेरे लिए दूसरा अवसर था। ब्रह्ममुहूर्त में हमने परिवार सहित जैसे ही पर्वत की यात्रा प्रारम्भ की, जगह-जगह विभिन्न देवी-देवताओं के विग्रहों का अगणित सिलसिला, सजी हुई दुकानें, होटलें, ध्वनि विस्तारकों पर बजते गीतों का शोरगुल, भीड़ और जैन यात्रियों की आस्थाओं का अपमान आदि देखकर मन वितृष्णा से भरता जा रहा था। लग ही नहीं रहा था, हम किसी महान् पवित्र जैन सिद्धक्षेत्र की वन्दनार्थ आगे बढ़े जा रहे हैं। तीस वर्ष पूर्व की और आज की स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर दिख रहा था। यह सब स्थिति देखकर हम लोग आपस में चर्चा कर रहे थे कि ऐसे तीर्थों पर वातावरण सुधार हेतु पूज्य मुनिश्री सुधासागर जी जैसे सामर्थ्यशाली मुनिराज की आवश्यकता है। उनके आगमन से निश्चित ही वातावरण बदल सकता है। इस बार हम लोग वन्दना करके वापिस लौटे, किन्तु मन खेद-खिन्न ही रहा।

किन्तु फरवरी २००४ के द्वितीय सप्ताह में सम्माननीय श्री रतनलाल जी बैनाड़ा से आगरा में पूज्य मुनिश्री की सफल यात्रा के जैसे ही विस्तृत समाचार सुने तथा मार्च के जिनभाषित में पढ़ा तो हम सभी के सुखद आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मन खुशियों से झूम उठा। पाँचवीं टोंक पर भगवान नेमिनाथ के चरण चिन्हों का दुर्लभ पूजन-अभिषेक होना तथा सौहार्दपूर्ण वातावरण बनना अपने आप में अभूतपूर्व सफलता है। इसे हम सब यदि 'गिरनार विजय' की संज्ञा दें, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

वस्तुतः पूज्यमुनि श्री सुधासागर जी हैं ही श्रमण संस्कृति तथा तीर्थक्षेत्रों के सजग प्रहरी। वे जहाँ भी विहार क्रम में कुछ दिन विराजते हैं, उस क्षेत्र का 'कायाकल्प' और कुछ न कुछ 'नया' होना जैसे निश्चित सा रहता है। सिद्धक्षेत्र गिरनार जी की पाँचवी टोंक पर दर्शनादि की सुविधाओं हेतु सौहार्दपूर्ण वातावरण तथा पहली टोंक पर त्रिकाल चौबीसी के निर्माण की पहल अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धियाँ हैं। अतः जहाँ हम सभी पूज्य मुनिश्री के प्रति सदा सविनय कृतज्ञता व्यक्त करते हैं वहीं यही मंगलकामना करते हैं कि यह सौहार्द भाव स्थायी बना रहे, इसके लिए हम सभी को मिलजुलकर आगे भी सदा प्रयत्नशील रहना होगा, तभी इस महान् सिद्धक्षेत्र में हमारी आस्था तथा श्रमण संस्कृति की विशेष पहचान सुरक्षित रह सकेगी।

बी-२३/४५, पी-६ शारदानगर कॉलोनी
खोजवाँ, वाराणसी - २२ ०१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पतिकाय : जैन मान्यता और आधुनिक विज्ञान

डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी'

जैन धर्म ने अपने जिन शाश्वत सिद्धांतों का प्रतिपादन प्रारंभ से किया, हजारों-हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी आज वे चिरनवीन हैं तथा आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर पूर्णत: सत्य सिद्ध होते हैं। 'वनस्पति' संबंधी मान्यता को ही लें। वनस्पति में 'जीव' संबंधी जैन मान्यता को काफी समय तक एक वर्ग स्वीकार नहीं करता था, किंतु विज्ञान ने जब इसे सिद्ध कर दिया तो यह वर्ग निरुत्तर हो गया। विज्ञान के प्रयोगों से उसे पूर्णत: सत्य सिद्ध करने का श्रेय भारतीय वैज्ञानिक प्रोफेसर जगदीशचंद्र बसु को प्राप्त हुआ। अनेक वर्षों के गहन अनुसंधान के बाद उन्होंने प्रयोगों के द्वारा पौधों में जीवन के लक्षण सिद्ध किए और यह निष्कर्ष निकाला कि पौधे भी संवेदनशील होते हैं, वे भी बाहरी उत्तेजना या बाधाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रोफेसर बसु ने वनस्पति के जीवन को साक्षात् देखने, मापने के लिए 'क्रेस्कोग्राफ' नामक एक अत्यंत संवेदनशील यंत्र बनाया। इसकी सहायता से पौधों की अनुक्रियाओं (रेस्पांसेज) के 'ग्राफ' तैयार किए जाते हैं और यह जाना जाता है कि पौधों को आघात (कष्ट आदि) पहुँचाने पर वे क्या अनुभव करते हैं? उन्होंने पौधों पर अनेक तरह के प्रयोग किए और जाना कि जिस तरह मनुष्य, पशु आदि थकान अनुभव करते हैं और थकान के जो लक्षण इन पर दिखते हैं उसी तरह के लक्षण पौधों में भी पाए जा रहे हैं। जैन दर्शन में प्रयुक्त वनस्पति संबंधी यह अवधारणा लाखों वर्ष प्राचीन है जिसे विज्ञान जगत में भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु ने सिद्ध कर बताया। पेड़ पौधों अर्थात् वनस्पति में भी जीवन होता है- इस वैज्ञानिक निष्कर्ष से सारे विश्व में हलचल सी मच गई। जैन मतावलंबी और मनीषी यह सब देख सुनकर आश्चर्यचकित थे कि प्राचीन जैन आगमों एवं शास्त्रों में तो यह तथ्य पहले से ही सिद्ध है। विज्ञान ने जब इसे सिद्ध करके बताया तो लोगों को यह एक नई खोज लगी।

सर जगदीशचंद्र बसु ने एक प्रयोग से यह भी सिद्ध किया कि पौधों को 'क्लोरोफार्म' के द्वारा निष्चेत किया जा सकता है। उसका प्रभाव समाप्त होने के बाद वनस्पतियाँ भी हमारी ही तरह सचेत हो उठती हैं। उन्होंने पौधों पर मदिरा का प्रयोग भी किया। यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि मदिरा के प्रभाव से अन्य प्राणियों की तरह वे भी मदहोश हो उठते हैं। उन्होंने यंत्र के माध्यम से यह भी देखा कि पत्तागोभी और गाजर को चाकू आदि से काटने पर वे काँप उठते हैं। लोग यह जानकर आश्चर्यचकित रह गए कि वनस्पति आदि जिन पदार्थों को लोग प्राय: निर्जीव (निष्प्राण) एवं संज्ञाहीन मानते थे- उन पर भी मदिरा, विष, चोट, आघात की वही प्रतिक्रिया होती है जो मनुष्य या पशु आदि की मांसपेशियों पर होती है। पौधों में भी हमारी तरह जीवत्व गुण होता है, जिसकी मदद से वे अपने आप को और अपने परिवेश को जानते -समझते हैं। भारत में इस वैज्ञानिक खोज का प्रथम श्रेय प्रो. बसु को प्राप्त है।

पेड़-पौधे भावनाप्रधान होते हैं- यह बात अब वैज्ञानिक तथ्य है। बेजुबान होने के बावजूद वे बहुत-कुछ महसूस कर सकते हैं। वे अपने संरक्षणदाता से प्यार और यातना देने वाले से नफरत भी करते हैं। पेड़ पौधों की संवेदनशीलता पर विभिन्न देशों में चल रही खोजों ने ऐसे अनेक रहस्यों से परदा हटाया है, जिन पर सहसा विश्वास नहीं होता। अमेरिकी वैज्ञानिक क्लाईव वेक्सीटर ने पेड़-पौधों की संवेदनशीलता पर कई दिलचस्प प्रयोग किए हैं। एक बार उन्होंने पौधे की यातना और दुख की अनुभूति को रिकार्ड करने का प्रयोग किया। उन्होंने एक पौधे को सूक्ष्म संवेदना दर्ज करने वाली एक मशीन से जोड़ा और फिर उस पौधे को गमले से उखाड़ फेंकने के बारे में सोचा। उनके आश्चर्य की तब सीमा नहीं रही जब उन्होंने पाया कि उनके ऐसा सोचने-भर से पौधे से जुड़ी मशीन के ग्राफ में कंपन पैदा होने लगा। उन्होंने यह प्रयोग कई बार दोहराया।

पेड़-पौधे काफी संवेदनशील होते हैं। उनके प्रति स्नेह रखने वालों से वे गहरा अपनत्व महसूस करते हैं। इसका प्रमाण उक्त अमेरिकी वैज्ञानिक को तब मिला जब एक दिन प्रयोगशाला में पौधों पर अध्ययन के दौरान उनकी अंगुली कट गई और उससे खून बहने लगा। उसी समय उनकी नजर पौधे से जुड़े 'गैलोविनोमीटर' नामक उपकरण पर पड़ी। उन्होंने देखा कि मीटर की सुई में कंपन पैदा हो रहा था। उनकी वेदना पौधे को महसूस हो रही थी। एक अन्य प्रयोग में उक्त वैज्ञानिक ने अपने संरक्षित पौधों के सामने एक माली को गुजारा। इस दौरान मशीन से जुड़ी मीटर की सुई शांत रही। लेकिन जैसे ही एक लकड़हारे को उन पौधों से होकर गुजारा, मीटर की सुई ने कंपन पैदा कर पौधे की बेचैनी प्रकट कर दी। रूसी वैज्ञानिक तथा मनोरोग विशेषज्ञ वी.एन. पुश्किन ने अपने अनुसंधानों में भी यह सिद्ध किया है कि पेड़ पौधों एवं मानव के तंत्रिका-तंत्र (नर्वस-सिस्टम) में कहीं-न कहीं गहरा संबंध जरूर है (दैनिक राष्ट्रीय सहारा, १६/२/१९९९ के अंक से)

दक्षिणी यूरोप में पाए जाने वाले 'मैड्रांक' नामक वृक्ष की संवेदना को वहाँ के निवासी प्राय: प्रत्यक्ष ही देखते हैं। यह वृक्ष दूर से देखने पर कंधे पर हाथ रखे आदमी की तरह नजर आता है। इसकी विशेषता यह है कि इसे जड़ समेत उखाड़ने पर यह बच्चों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की तरह आंसू बहाने लगता है। जब इस पर कोई प्रहार होता है, तब भी यह रोने लगता है। इस तरह वनस्पति जगत में जहाँ जीवत्व संबंधी अवधारणा की विज्ञान ने पुष्टि की, वहीं उसकी संवेदनशीलता तथा विविध शक्ति संपन्नता भी सिद्ध हुई।

जैन दर्शन की वनस्पति जीव संबंधी विवेचना की तरह ही 'शब्द' की पौद्गलिकता आदि अनेक जैन सिद्धांत जैसे जैसे विज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध होते जा रहे हैं, लोगों का विश्वास और लगाव जैन दर्शन और धर्म के प्रति गहरा होता जा रहा है। इसलिए यह कहना प्रासंगिक होगा कि जैन धर्म और दर्शन के विभिन्न क्षेत्रों में गहन अध्ययन-अनुसंधान की आज के संदर्भ में पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है।

जैन धर्म और दर्शन के अनुसार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ये छह द्रव्य हैं। इनका विशेष विवेचन आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र और इस पर लिखित अनेक टीका ग्रंथों तथा जैन साहित्य के शताधिक ग्रंथों में उपलब्ध है। इन छह द्रव्यों में प्रथम जीवद्रव्य चेतन्यवान है। तत्त्वार्थसूत्र (२/८)में 'उपयोगो लक्षणम्' सूत्र के माध्यम से उपयोग (ज्ञान, दर्शन, रूप-स्वभाव) को जीव का लक्षण कहा है। जीव के दो भेद हैं : संसारी और मुक्त। संसारी जीव के छह भेद हैं- पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस। इनमें प्रारंभ के पांच जीव स्थावर एवं एकेंद्रिय कहे जाते हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं।

वनस्पतिकायिक जीवों के विषय में यदि जैनशास्त्रों का सूक्ष्मतम, गहन तथा वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो वनस्पति जगत संबंधी यह प्राचीन अध्ययन विश्व को जैन धर्म का एक अनुपम और महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध हो सकता है तथा आज भी जैनशास्त्रों के इस संबंधी अनेक तथ्य विज्ञान के लिए 'नवीन' हो सकते हैं।

वनस्पति : जैन धर्म की दृष्टि में स्वरूप विवेचन

जिस जीव के वनस्पति नामकर्म का उदय रहता है, वही जीव वनस्पति शरीर में जन्म लेता है। इसके केवल स्पर्शन इंद्रिय ही होती है तथा संस्थान नामकर्म के उदय से संस्थान होता है। स्थावर जीवों में वनस्पति एकेंद्रियकाय जीव के दो भेद हैं- प्रत्येककाय और अनंतकाय या साधारणकाय वनस्पति। इनमें प्रत्येककाय बादर या स्थूल ही होता है, पर साधारणकाय बादर और सूक्ष्म दोनों रूप होता है।

प्रत्येककाय वनस्पति : सामान्यत: एक जीव का एक शरीर अर्थात् जिनका पृथक-पृथक शरीर होता है या एक एक शरीर के प्रति एक-एक आत्मा को प्रत्येककाय कहते हैं। जैसे खैर (कत्था) आदि वनस्पति। जितने प्रत्येक शरीर हैं, वहाँ उतने प्रत्येक वनस्पति जीव होते हैं, क्योंकि एक-एक शरीर के प्रति एक-एक जीव होने का नियम है। अर्थात् एक शरीर में एक जीव होने वाली वनस्पति को प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

अनंतकाय (साधारण) वनस्पति :

जिसमें एक शरीर में अनंत जीव हैं अर्थात् अनंत जीवों के सम्मिलित शरीर को अनंतकाय या साधारण शरीर कहते हैं। क्योंकि उस शरीर में अनंत जीवों का जन्म, मरण, श्वासोच्छ्वास आदि साधारण (समान) रूप से होता है, अर्थात् एक साधारण शरीर के एक जीव उत्पन्न होता है, वहाँ अनंत जीवों की उत्पत्ति होती है तथा जिस शरीर में एक जीव मरता है, वहाँ अनंत जीवों का मरण होता है। धवला के अनुसार बहुत जीवों का जो एक शरीर है- वह साधारण शरीर कहलाता है। उसमें जो जीव निवास करते हैं वे साधारण शरीर जीव कहलाते हैं। इस साधारण जीवों का आहार साधारण (समान) ही होता है और समान ही श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं। अर्थात् एक साथ उत्पन्न जिन अनंतानंत जीवों को आहारादि पर्याप्ति तथा उनके कार्य समान काल में होते हों, उन साधारण जीवों का लक्षण साधारण कहा है। साधारण को ही निगोद और अनंतकाय भी कहते हैं।

आचार्य वट्टकेर कृत शौरसेनी प्राकृत भाषा के प्राचीन ग्रंथ मूलाचार के अनुसार गूढ़सिरा अर्थात् जिनकी शिरा (नसें), संधि (बंधन) तथा गाँठ नहीं दिखती, जिसे तोड़ने पर समान टुकड़े हो जाते हैं, दोनों भागों में परस्पर तंतु न लगा रहे तथा जिनका छेदन करने पर भी पुन: वृद्धि (अंकुरित) को प्राप्त हो जाए उसे साधारण शरीर तथा इन सब लक्षणों के विपरीत को प्रत्येक शरीर कहते हैं। लाटी संहिता के अनुसार भी जिसके तोड़ने में दोनों भाग चिकने और एक से हो जाएँ, वह साधारण वनस्पति है। जब तक उसके टुकड़े इसी प्रकार होते रहते हैं, तब तक उसे साधारण वनस्पति समझना चाहिए। जिसके टुकड़े चिकने और एक से न हों उन्हें प्रत्येक वनस्पति कहा जाता है।

प्रत्येक वनस्पति के दो भेद :

आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती कृत शौरसेनी प्राकृत के 'गोम्मटसार' ग्रंथ में प्रत्येक वनस्पति के दो भेद बतलाए हैं- १. सप्रतिष्ठित, २. अप्रतिष्ठित। जिन वनस्पतियों का बीज मूल, अग्र, पर्व, कंद अथवा स्कंध है, अथवा जो बीज से ही उत्पन्न होती हैं तथा सम्मूर्च्छन हैं, वे सभी वनस्पतियाँ सप्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित दो प्रकार की होती हैं।

जिनका सिरा, संधि, पर्व अप्रकट हो और जिनको भंग करने पर समान भंग हो, दोनों भंगों में परस्पर तंतु न लगा रहे तथा छेदन पर भी जिनकी पुन: वृद्धि हो जाए, उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। इससे विपरीत अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति होती है।

जिन वनस्पतियों के मूल, कंद, त्वचा, प्रवाल (नवीन कोंपल), क्षुद्रशाखा (टहनी), पत्र, फूल तथा बीजों को तोड़ने से समान भंग हो, उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं और जिनका भंग समान हो उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिस वनस्पति के कंद, मूल, क्षुद्रशाखा या स्कंध की छाल मोटी हो उसको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतजीव (सप्रतिष्ठित प्रत्येक) कहते हैं। जिस योनिभूत जीव में वही जीव या कोई अन्य जीव आकर उत्पन्न हो वह और मूलादि प्रथम अवस्था में अप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है।

लाटी संहिता के अनुसार मूली, अदरक, आलू, अरबी, रतालू, जमीकंद आदि मूल, गंडरीक (एक प्रकार का कडुआ जमीकंद) के स्कंध, पत्ते, दूध और पर्व - ये चारों अवयव, आक का दूध, करीर, सरसों आदि के फूल, ईख की गांठ और उसके आगे का भाग, पांच उदंबर फल (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर फल) तथा कुमारीपिंड (गवारपाठा)की सभी शाखाएँ आदि साधारण वनस्पति हैं। वृक्षों पर लगी कोंपलें भी साधारण हैं, पकने पर प्रत्येक हो जाती हैं। शाकों में चना, मेथी, बथुआ आदि कोई साधारण है, तो कोई प्रत्येक। किसी-किसी वृक्ष की जड़, किसी-किसी के स्कंध, शाखाएँ, पत्ते, फूल, पर्व तथा फल आदि साधारण होते हैं।

मूलाचारकार के अनुसार मूलबीज, अग्रबीज, पोर (पर्व), बीज, कंदबीज, स्कंधबीज, बीजरूह आदि तथा सम्मूर्च्छन (जड़ के अभाव में भी जिनका जन्म संभव है) वनस्पतियाँ प्रत्येक और अनंतकाय (साधारण शरीर) दोनों ही प्रकार की होती हैं। सूरण आदि कंद, अदरक आदि मूल, छाली (त्वक्) स्कंध, पत्ता, पल्लव, पुष्प, फल, गुच्छा, गुल्स (करंज, कंथरादि), बेल तृण तथा पर्वकाय (ईख, बेंत आदि) ये सम्मूर्च्छन वनस्पतियाँ भी प्रत्येक और अनंतकाय हैं। बेल, वृक्ष, तृण आदि वनस्पतियाँ तथा सभी प्रत्येक और साधारण वनस्पतियाँ हरितकाय होती हैं।

श्वेताम्बर सम्मत आगम परंपरा के प्रज्ञापनासूत्र में प्रत्येककाय बादर वनस्पतिकायिक जीव के अंतर्गत बारह भेद बतलाए हैं- वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग (पर्व वाले) तृण, वलय (केला आदि जिनकी छाल गोलाकार हो), हरित, ओषधि, जलरूह (जल में पैदा होने वाली वनस्पति) और कुहणा (भूमिस्फोट)। इसी ग्रंथ में इन्हीं बारहों के अनेक-अनेक भेदों का उल्लेख है, जिनका अध्ययन वनस्पतिशास्त्र-विज्ञान की दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इस विवेचन के आधार पर जैनशास्त्रों के अनुसार वनस्पति के दस प्रकार फलित हुए- मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

मूलबीज आदि वनस्पतियों के उपर्युक्त भेदों के आधार पर वनस्पतिकायिक जीवों के उत्पन्न होने के निम्नलिखित आठ प्रधान स्थान माने जा सकते हैं।

मूलबीज : जिसके मूल में बीज लगता हो या मूल ही जिनका बीज (उत्पादक भाग) हो, जैसे कंद आदि।

अग्रबीज : जिस वनस्पति के सिरे पर बीज लगता हो अर्थात् आगे का हिस्सा ही जिनका बीज हो, जैसे कोरंटक।

पर्वबीज : गांठ ही जिनका बीज हो, जैसे ईख आदि।

स्कंधबीज : जिसके स्कंध या जोड़ ही बीज हों, जैसे थूहर आदि।

बीजरूह : जिसके मूलबीज में ही बीज रहता हैं जैसे गेहूँ आदि चौबीस प्रकार के अन्न।

सम्मूर्च्छन : जो वनस्पति अपने-आप पैदा होता है।

तृण : तृण आदि घास रुप।

बेल वनस्पति : चंपा, चमेली, ककड़ी, खरबूजा आदि की लताएँ।

वस्तुतः वनस्पति जाति के दो प्रकार हैं- १. बीजोद्भव तथा २. सम्मूर्च्छन। बीजोद्भव वनस्पति के अंतर्गत मूलज, अग्रज, पर्वत आदि हैं। दूसरी सम्मूर्च्छन के अंतर्गत कंदकाय, मूलकाय, त्वक्काय आदि हैं। सम्मूर्च्छन वनस्पति की उत्पत्ति में पृथ्वी, हवा और जल-ये उपादान कारण होते हैं। प्रायः देखा भी जाता है कि श्रृंग (सींग) से शर (एक प्रकार का सफेद सरकंडा या घास) तथा गोबर से शालूक उत्पन्न हो जाते हैं। ये बीज के बिना ही उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार कुछ ऐसी वनस्पतियाँ भी हैं जिनमें पुष्प के बिना ही फल उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें फल वनस्पति कहते हैं। कुछ में पुष्प तो उत्पन्न होते हैं, पर फल उत्पन्न नहीं होते- उन्हें पुष्प वनस्पति कहते हैं तथा कुछ में पत्र ही उत्पन्न होते हैं, पुष्प फलादिक नहीं उन्हें पत्र वनस्पति कहते हैं।

दशैवकालिकसूत्र में वनस्पति शब्द को वृक्ष, गुच्छ, गुल्म आदि सभी प्रकार की हरियाली का वाचक माना गया है। कुंदकुंदकृत माने जाने वाले 'मूलाचार' आगम ग्रंथ में वनस्पति, वृक्ष, ओषधि, विरुध, गुल्म और वल्ली इनके विभाजनपूर्वक इस प्रकार अर्थ बताए हैं - जिसमें फली लगती है, उसे वनस्पति कहते हैं। जिसमें पुष्प और फल उत्पन्न होते हैं, उसे वृक्ष कहते हैं। फलों के पक जाने पर जो नष्ट हो जाते हैं, ऐसी वनस्पति को औषधि कहते हैं। गुल्म और वल्ली को विरुध कहते हैं। जिसकी शाखाएँ छोटी तथा जड़ (मूल) जटाकार हैं, उस झाड़ी को गुल्म कहते हैं, तथा वृक्ष पर वलयाकार रूप से चढ़कर बढ़ने वाली वेल या लता को वल्ली कहते हैं। आयुर्वेदिक साहित्य के अंतर्गत 'सुश्रुत-संहिता' ग्रंथ में स्थावर औषधि में इन्हीं चार भेदों की गणना की है- १. जिनके पुष्प न हों, किंतु फल होते हैं- उन्हें वनस्पति, २. जिनके पुष्प और फल दोनों आते हैं- उन्हें वृक्ष, ३. जो फैलने वाली या गुल्म के स्वरूप की हो उन्हें विरुध तथा ४. जो फलों के पकने तक ही जीवित या विद्यमान रहती हों- उन्हें औषधि कहते हैं।

बादरकायिक और सूक्ष्मकायिक वनस्पति :

शैवाल (काई) पणक जमीन पर, ईंटों तथा वामी आदि में उत्पन्न (केण्णग या केणग) वर्षाकाल में कूड़ा आदि में उत्पन्न छत्राकार वनस्पति जिसे कुकुरमुत्ता आदि भी कहते हैं, कवक - सींग में उत्पन्न होने वाली छत्ररूप जटाकार वनस्पति और कुहण (बासे आहार काजिक आदि में उत्पन्न पुष्पिका या फफूंद)- ये सब बादर (स्थूल) कायिक वनस्पति हैं तथा जल, पृथ्वी, हवा, अग्नि आदि भी बादरकायिक हैं। सूक्ष्मकाय जीव सर्वत्र जल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकाश और स्थल में रहते हैं।

पृथ्वी आदि से लेकर वनस्पतिपर्यंत बादर (स्थूल) काय और सूक्ष्मकाय - ये दोनों होते हैं। बादरकाय जीव आठ पृथ्वियों तथा विमानादि के सहारे रहते हैं। साथ ही सूक्ष्मकाय, जो अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर वाले होते हैं, वे जल, आकाश और पृथ्वी-सर्वत्र बिना आश्रय के रहते हैं। अर्थात् वे सूक्ष्म जीव संपूर्ण जगत में निरंतर रहते हैं। जगत का एक भी प्रदेश इनसे रहित नहीं है, किंतु बादर जीव लोक के एक भाग में रहते हैं।

भविष्यवाणियों में वनस्पतियों का उपयोग :

कुछ भविष्यवाणियों में वनस्पतियाँ का ऐसा अचूक प्रयोग सिद्ध हुआ है कि इनके सामने अन्य की भविष्यवाणियों तीर-तुक्का जैसी लगती हैं। जैसे वर्षा होने या न होने संबंधी भविष्यवाणी को ही लें। प्रकृति के प्रांगण में उगने वाली सुनहरी लिली (ग्लोरिओसा सुपरवा-ग्लोरी लिली) को ही लीजिए- जब अच्छी वर्षा होने की स्थिति होती है तब इसमें रंगीन लबादा ओढ़े लाल-पीले फूल खिलते हैं और जब वर्षा नहीं होने वाली हो तो इसमें मात्र पत्तियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं।

कुछ ऐसे ही गुण-धर्म सुगंधित पत्तियों वाले मधुमालती नामक वृक्ष में पाए जाते हैं। इसकी शाखाएँ कलियों के गुच्छों से हमेशा लदी रहती हैं। बादलों के घिर आने पर इसकी बंद कलियों का खिल जाना वर्षा के शुभागमन की सूचना देता है, किंतु बादलों की नीयत यदि कहीं अन्यत्र जाकर बरसने की हो तो ये उनका मनोभाव झट ताड़ जाती हैं और कलियाँ बंद रखकर वर्षा न होने की भविष्यवाणी कर देती हैं।

गठालू (डायोस्कोरिया) नामक बेल (लता) की स्थिति तो और भी विचित्र है। इसके ऊपरी कंदों की वृद्धि बंद हो जाए तो समझा जाता है कि आगे वर्षा नहीं होगी। जिस वर्ष वर्षा बिल्कुल न होने वाली हो और सूखे की संभावना हो, उस वर्ष तो इसके कंद, पहले से ही भूमि पर टपक-टपककर शोक-संतप्तों की तरह दम तोड़ने लगते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि सर्व सामर्थ्यवान माने जाने वाले मनुष्य से भी विलक्षण सामर्थ्य जीव जगत के सहचरों-सहजीवियों में विद्यमान हैं। जैन आगम साहित्य में वर्णित छह द्रव्यों के अंतर्गत 'जीव' द्रव्य की सांगोपांग विस्तृत विवेचना का सूक्ष्म दृष्टि से यदि वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाए तो अनेक ऐसे नए तथ्य आ सकते हैं, जो विज्ञान जगत के लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं। विशेषकर पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस-इन छह जीव संबंधी 'षट्जीवनिकाय' नाम से प्रसिद्ध अवधारणा का अध्ययन इस दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण है। वनस्पति संबंधी पूर्वोक्त जैनशास्त्रीय अध्ययन यद्यपि संक्षिप्त ही है, किंतु इतने में भी इस विषयक सूक्ष्म विवेचना का दिग्दर्शन तो हो ही जाता है। पर्यावरण के संरक्षण और उसके शुद्धीकरण में इन अध्ययनों का उपयोग तो संपूर्ण विश्व के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

अनेकान्त विद्या भवन,
बी २३/४५ पी-६, शारदा नगर, कॉलोनी
खोजवाँ, वाराणसी - २२१ ०१०

जिंदगी

कितना अच्छा हो
यदि हमारा जीवन
सरल हो
जो हम बाहर दिखें
वहीं अंदर हों
जो कहें

वही आचरण करें
वही महसूस करें
दोयम जिन्दगी न जिएं,

डॉ. वन्दना जैन
कार्ड पैलेस, वर्णी कॉलोनी,
सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छहढालाकार पं. दौलतराम जी

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन

जिनके कृतित्व से जिनवाणी का मर्म जन-जन तक पहुँचा, ऐसी रसमयी मेधा के धनी कविवर, पंडितप्रवर दौलतराम जी को कौन नहीं जानता? आज जैन समाज में यदि समयसार, तत्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार के बाद किसी अन्य ग्रन्थ की सर्वाधिक चर्चा होती है तो वह ग्रन्थ छहढाला ही है, जो पंडितप्रवर दौलतराम जी की कालजयी कृति है। यह कृति भाव, भाषा, छन्द बद्धता, रसमयता, गेयता की दृष्टि से तो अनुपम है ही अनुभूति की दृष्टि से भी अनुपम है। कृति वही सच्ची होती है जो कृतिकार के प्रति सम्मान से भर दे, साथ ही पाठकों को भी हितकारी हो। छहढाला तो 'गागर में सागर' के समान है जो चतुर्गति के दु:खों से परिचित कराते हुए इन दु:खों से बचने की प्रेरणा देती है। गृहस्थ और मुनिधर्म का स्वरूप सरल शब्दों में बताने में यह कृति समर्थ है।

कविवर दौलतराम जी ने अनेक पदों की रचना की, जिन्हें पढ़कर वैराग्य की अनुभूति होती है। वे लिखते हैं-

जिया जग धोके की टाटी ॥
झूंठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निशदिन घाटी ॥ १ ॥
जान बूझकर अंध बने हो, आँखिन बाँधी पाटी ॥ २ ॥
निकल जायेंगे प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी ॥ ३ ॥
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी ॥४ ॥

निश्चित रुप से रचनाकार ने अपने को धोखे में नहीं रखा और अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का उपयोग जैनागम सम्मत साहित्य के प्रणयन में किया। आज सम्पूर्ण जैन समाज उनके प्रति श्रद्धा से नत है।

छहढालाकार पंडितप्रवर दौलतराम जी का जन्म हाथरस के निकट सासनी ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री टोडरमल था। वे पल्लीवाल जैन जाति के थे। उनका गोत्र गंगीरीवाल था। वे 'फतेहपुरी' या फतहपुरिया के नाम से जाने जाते थे। इनका जन्म संवत् १८५० से १८५५ के मध्य माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि सन् १८५७ के गदर (प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन) के समय भागते हुये इनकी जन्मपत्री परिजनों के हाथ से गिर गयी थी। इसलिए वास्तविक जन्म संवत् अज्ञात है। आपके पुत्र श्री टीकाराम के कथनानुसार आपका जन्म विक्रम संवत १८५५ या १८५६ में हुआ था। आपके पिता दो भाई थे। छोटे भाई का नाम चुन्नीलाल था। दोनों भाई हाथरस में रहते हुए कपड़े का व्यापार करते थे। पंडित जी का विवाह अलीगढ़ निवासी सेठ चिन्तामणि की सुपुत्री के साथ हुआ जिनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े पुत्र टीकाराम का जन्म संवत् १८८२ में हुआ तथा छोटे पुत्र का जन्म संवत् १८८६ में हुआ। बड़े पुत्र टीकाराम लश्कर (ग्वालियर) में रहते हुए व्यापार करने लगे। छोटे पुत्र का असमय में ही निधन हो गया। मृत्यु के समय उसके एक पुत्री थी। युवावस्था में ही छोटी बहू को वैधव्य का दु:ख सहना पड़ा। पंडित जी के वंशज आज भी लश्कर में निवास करते हैं।

श्री दौलतराम जी की विद्याध्ययन के प्रति रुचि थी अत: वे मन लगाकर विद्याध्ययन करते रहे। पारिवारिक कपड़े का व्यवसाय उनके लिए सहज था किन्तु उसमें उनकी रुचि नहीं थी। 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे,' की भावना रखने वाला कवि आखिर विद्या के प्रति अनुराग को कैसे छोड़ सकता था। कुछ दिन आपने हाथरस में बजाजी का कार्य किया। संवत् १८८२ में मथुरा के सेठ राजा लक्ष्मणदास जी के पिता सेठ मनीराम जी, पं. चम्पालालजी के साथ किसी कार्य हेतु हाथरस आये। हाथरस के मंदिर जी में उन्होंने पं. दौलतरामजी को 'गोम्मटसार' ग्रन्थ का स्वाध्याय करते हुए देखा, देखकर वे अत्यन्त हर्षित हुए और उन्हें अपने साथ मथुरा ले गये। मथुरा में उन्होंने पंडित जी को बड़े आदर के साथ रखा, परन्तु पंडितजी का मन मथुरा में नहीं लगा और वे वहाँ से लश्कर आ गये और वहाँ से अपनी जन्मभूमि सासनी चले गये। सासनी से अलीगढ़ आकर अपने पैतृक वस्त्र व्यवसाय से जुड़ा छींट छापने का कार्य करने लगे। किन्तु जिनका मन धर्ममय हो चुका हो वह सांसारिक कार्यों में रचपच नहीं सकता है, सो वे भी छींट छापते समय सामने चौकी पर गोम्मटसार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थ रख लेते और छींट छापने के साथ ही इन ग्रन्थों के श्लोक पढ़ते-रटते जाते। ऐसा करते हुए वे प्रति दिन ५० से ८० तक श्लोक याद कर लेते। आपकी जैनागम के प्रति रुचि तो स्पष्ट थी ही अत: स्वाध्यायशीलता में रुचि बराबर बनी रही। कुछदिन बाद उनका अलीगढ़ भी छूट गया और वे देहली आ गये जहाँ उन्हें सामाजिक जनों का सहयोग भी मिला और तत्त्वजिज्ञासुओं, विद्वानों स्वाध्यायशीलों का सान्निध्य भी। अत: आपके जीवन का अभिन्न अंग शास्त्र स्वाध्याय बन गया। कहते हैं भावना भव नाशिनी होती है। जिनके विचार निजघर की तलाश कर रहे हों, उनका तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहना ही क्या? पं. दौलतराम जी लिखते हैं कि ..

हम तो कबहुँ न निजघर आये,
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये।
पर पद निजपद मान मगन है, पर परणति लिपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कंद मनोहर, चेतन भाव न भाये॥ १॥
नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतम गुण नहिं गाये॥ २॥
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहूँ विषयन को, सतगुरु वचन सुनाये॥ ३॥

कवि की स्वाध्यायशीलता और सर्जनात्मक क्षमता का सम्यक् परिपाक हमें उनकी कृति 'छहढाला' में देखने को मिलता है जिसकी रचना आपने संवत् १८९१ में की थी। यह कोई एक कृति मात्र नहीं है अपितु इसमें कवि ने अपने सुदीर्घ स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान का अध्यात्म की भावभूमि के साथ प्रस्तुत किया है। यह छहढालें बाह्य-संसार से बचाव का उपाय बताकर आत्मिक वैभव प्राप्ति तक का मार्ग प्रशस्त करती हैं। ढाल तो मात्र तलवार का प्रहार रोकती है यह तो संसार का प्रभाव रोकने में समर्थ है। यही कारण है कि यह कृति स्वाध्याय के लिए आद्य ग्रन्थ बन गयी है। 'छहढाला' के अतिरिक्त आपने अनेक पदों की रचना की, जिन्हें सर्वप्रथम पं. पन्नालाल बाकलीवाल ने संग्रहीत कर 'दौलत विलास प्रथम भाग' के नाम से प्रकाशित किया। कालान्तर में कलकत्ता से 'दौलत-पद संग्रह' नाम से कुछ और पदों को संग्रह कर प्रकाशित किया गया, फिर भी अनेक पद अब भी प्रकाशित होने से बचे रहे। इस हेतु सम्यक् प्रयास सन् १९५५ में अलीगंज (एटा) से हुआ और सम्पूर्ण पदों का संग्रह कर 'दौलत विलास' नाम से प्रकाशन हुआ। यह पद अध्यात्म रस के रसिकों के लिए सरसता के भण्डार सदृश हैं। उनकी चाह है-

राग-द्वेष दावानल तें बचि, समता रस में भीज॥
हे जिन.॥ १॥
पर को त्याग अपनपो निज में, लाग न कबहुँ छीजे।
हे जिन.॥ २॥
कर्म कर्मफल माहिं न राचै, ज्ञान सुधारस पीजे।
हे जिन.॥ ३॥
मुझ कारज के तुम कारन वर, अरज 'दौल' की लीजें।
हे जिन.॥ ४॥

यद्यपि दौलतराम जी के पदों की भाषा खड़ी बोली-हिन्दी है किन्तु उस पर ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आपके द्वारा रचित कुल पदों की संख्या १५० है। विभिन्न भगवानों की स्तुतियाँ भी आपने पदरुप में लिखीं। 'देखो जी आदीश्वर स्वामी', 'हमारी वीर हरो भवपीर', 'नेमिप्रभु की श्याम बरन छवि नैनन छाय रही' आदि स्तुतियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं।

कवि ने एक ओर जहाँ स्वाध्याय में चित्त लगाया, छहढाला, स्फुट पदों की रचना की वहीं तीर्थयात्राएँ कर अपने लिए भक्तिमार्ग पर चलाया। उन्होंने एक बार वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशु गति नहिं होई, की भावना के साथ माघ वदी चतुर्दशी संवत् १९१० में सम्मेदशिखर जी की यात्रा की। यात्रा करते हुए उनके मन में विचार आया कि हे भगवान! वह दिन कब आये जब मैं भी आपकी तरह सिद्ध पद-प्राप्त कर सकूँ, निज स्वरूप में रमण कर सकूँ-

चिदराय गुन सुनो मुनो प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव, हो स्वकीय में थिरा॥
अबे सुथल सुकुल सुसंग बोध लहि खरा।
'दौलत' त्रिरत्न साध लाध पद अनुत्तरा॥

ऐसा कहा जाता है कि कविवर पं. दौलतराम जी को अपनी मृत्यु का बोध छह दिन पहले ही हो गया था अत: उन्होंने अपने कुटुम्बियों परिजनों को एकत्रित कर उनसे अपनी भूलों के प्रति क्षमायाचना की तथा स्वयं का सभी के प्रति क्षमाभाव है ऐसा कहकर कहा कि- 'आज से छठवें दिन मध्याह्न के पश्चात् मैं इस शरीर से निकलकर अन्य शरीर धारण करूँगा।' इस प्रकार परिजनों के प्रति मोह छोड़ते हुए मार्गशीर्ष कृष्ण अमावस्या संवत् १९२३ को अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। अपनी मृत्यु के दिन ही उन्होंने 'गोम्मटसार' ग्रन्थ का स्वाध्याय पूर्ण किया था। जब उनके प्राण निकले वे महामन्त्र णमोकार का जाप कर रहे थे। इस तरह उनके जीवन की श्रुतसाधना फलीभूत हुई। उनकी तो भावना ही थी-

सुरपति नरपति खगपति हू की, भाग न आस निवारी।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, ज्यौं पावै शिवनारी॥
मत कीज्यौ जी यारी॥

यद्यपि पं. प्रवर दौलतराम जी का नश्वर शरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु 'छहढाला' के रूप में उनकी भाव-आत्मा से हम रोज परिचित होते हैं। यही कृति और कृतिकार का सुयश है।

प्रधान सम्पादक -पार्श्व ज्योति
श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्, बुरहानपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतन लाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता : अनन्त कुमार जैन, आगरा

जिज्ञासा : यदि किसी भोगभूमियाँ जीव की आयु एक करोड़ पूर्व एक वर्ष हो तो उसे गिनने योग्य होने पर भी असंख्यात वर्षायुष्क क्यों कहा जाता है ?

समाधान : एक करोड़ पूर्व तक की आयु वालों को संख्यात वर्षायुष्क और इससे एक समय भी अधिक आयु वालों को असंख्यात वर्षायुष्क कहना रुढ़ी है। वास्तव में यह संख्या संख्यात वर्ष में आती है। संख्यात और असंख्यात के संबंध में आ. जिनसेन ने आदिपुराण पर्व ३, श्लोक नं. २१८ से २२७ में इस प्रकार कहा है (टीका पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य)

चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है। चौरासी लाख का वर्ग करने अर्थात् परस्पर गुणा करने से जो संख्या आती है उसे पूर्व कहते हैं।

(८४०००० × ८४०००० = ७०५६०००००००००) इस संख्या में एक करोड़ का गुणा करने से जो लब्ध आवे उतना एक पूर्व कोटि कहलाता है। पूर्व की संख्या में चौरासी का गुणा करने पर जो लब्ध आवे उसे पर्वाङ्ग कहते हैं तथा पर्वाङ्ग में पर्वाङ्ग अर्थात चौरासी लाख का गुणा करने से पर्व कहलाता है॥ २१८-२१९॥ इसके आगे जो नयुताङ्ग, नयुत आदि संख्याएँ कही हैं उनके लिए भी क्रम से यही गुणाकार करना चाहिए। भावार्थ - पर्व को चौरासी से गुणा करने पर नयुताङ्ग, नयुताङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर नयुत, नयुत को चौरासी लाख से गुणा करने पर कुमुदाङ्ग, कुमुदाङ्ग को चौरासी लाख से गुना करने पर कुमुद, कुमुद को चौरासी से गुणा करने पर पद्माङ्ग और मदमाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर पद्म, पद्म को चौरासी लाख से गुणा करने पर नलिनाङ्ग और नलिनाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर नलिन होता है। इसी प्रकार गुणा करने पर आगे संख्याओं का प्रमाण निकलता है। २२०। अब क्रम से उन संख्या के भेदों के नाम कहे जाते हैं जो कि अनादिनिधन जैनागम में रुढ़ है।२२॥

पूर्वाङ्ग, पूर्व, पर्वाङ्ग , पर्व, नयुताङ्ग, नयुत, कुमुदाङ्ग, कुमुद, पदमांङ्ग, पदम, नलिनाङ्ग, नलिन, कमलाङ्ग, कमल, तुटयङ्ग, तुटिक, अटटाङ्ग, अटट, अममाङ्ग, अमम, हाहाङ्ग, हाहा, हूहूबङ्ग, हूहू, लताङ्ग, लता, महालताङ्ग, महालता, शिरः, प्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचल ये सब उक्त संख्या के नाम हैं जो कि कालद्रव्य की पर्याय हैं। यह सब संख्येय हैं- संख्यात के भेद हैं इसके आगे संख्या से रहित - असंख्यात है ॥ २२२-२२७॥

विशेष : अचल =८४ ×९०३१ शून्य होता है। यह संख्या डेढ़ सौ अंक प्रमाण है। अर्थात् इससे आगे की संख्या को असंख्यात मानना चाहिए।

श्री तिलोपयण्णत्ति अधिकार - ४, गाथा २९६ से ३१२ तक भी उपरोक्त प्रकार ही वर्णन है। परन्तु गाथा ३१३ में उन्होंने अचल से बहुत आगे जाकर असंख्यात वर्ष माना है।

प्रश्नकर्ता : नरेन्द्र कुमार जैन, सनावद

जिज्ञासा : कोई देव उपपाद शैया में जन्म लेकर बाहर निकलते समय क्या मनुष्यवत् वस्त्र रहित होते हैं या आगम में कुछ और वर्णन मिलता है स्पष्ट करें?

समाधान : आगम में इस संबंध में ऐसा वर्णन मिलता है कि उपपाद शैया से बाहर आते समय देवगण मुकुट, माला आदि सहित ही बाहर निकलते हैं। बाहर आने के बाद उनका विविध रूप से श्रृंगार किया जाता है। कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं-

१. आदिपुराण पर्व ५, श्लोक २५७

ज्वलत्कुण्डलकेयूरमुकुटाङ्गदभूषणः।
स्रग्वी सदंशुकधरः प्रादुरासीन्महाद्युतिः ॥ २५७॥

अर्थ- दैदीप्यमान कुण्डल, केयूर, मुकुट और बाजूबन्द आदि आभूषण पहने हुए, माला से सहित और उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए ही वह अतिशय कान्तिमान ललितांग नामक देव उत्पन्न हुआ॥ २५७॥

२. आदिपुराण पर्व ६ में आयु के छह माह शेष रहने पर ललितांग देव के संबंध में इस प्रकार कहा है-

मालाऽस्य सहजा तस्य महोरः स्थलसंगिनी।
म्लानिमागादमुष्येव लक्ष्मीर्विश्लेषभीलुका॥ २॥

अर्थ - जन्म से ही उसके विशाल वक्ष स्थल पर पड़ी हुई माला ऐसी म्लान हो गयी मानो उसके वियोग से भयभीत हो उसकी लक्ष्मी ही म्लान हो गयी हो। (इससे प्रतीत होता है कि जन्म के समय जो माला आदि पहने हुए जन्म होता है, वे जीवन पर्यंत तक शरीर पर रहती हैं)

३. आदिपुराण दशम पर्व, पृष्ठ २२३ पर, श्लोक नं. १७६ में इस प्रकार लिखा है- 'उस अच्युतेन्द्र का सुन्दर शरीर साथ-साथ उत्पन्न हुए आभूषणों से ऐसा मालूम होता था मानो उसके प्रत्येक अंग पर दया रूपी लता के प्रशंसनीय फल ही लग रहे हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. आदिपुराण पर्व ११,श्लोक १४७ का अर्थ इस प्रकार है-

वह अहमेन्द्र साथ-साथ उत्पन्न हुए दिव्य वस्त्र, दिव्य माला और दिव्य आभूषणों से विभूषित जिस मनोहर शरीर को धारण करता था, वह ऐसा जान पड़ता था मानो सौन्दर्य का समूह हो।

५.महाकवि पुष्पदन्त विरचित महापुराण भाग-१, पृष्ठ २५९ में इस प्रकार कहा है: उस स्वर्ग में मुकुटों , हारों , केयूरों दोरों से सहित देव एक क्षण में उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त सभी प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि उपपाद शैया से बाहर आते समय देवगण वस्त्र रहित नहीं होते, बल्कि विभिन्न वस्त्राभूषणों आदि से सहित उत्पन्न होते हैं।

प्रश्नकर्ता : नवीन कुमार जैन, फिरोजाबाद

जिज्ञासा : तत्वार्थसूत्र अध्याय ७ में जो शून्यागार आदि अचौर्यव्रत की भावनाएँ कही गई हैं, वे श्रावकों के लिए किस अपेक्षा से मान्य हो सकती हैं?

समाधान : पं. सदासुखदास जी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में श्लोक नं. १२१ के उपरान्त भावना नामक अधिकार में उंपरोक्त विषय पर इसप्रकार लिखा है: शून्यागार, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि, साधर्माविसम्वाद ये पन्च भावना अचौर्यव्रत की हैं। यातैं अचौर्य अणुव्रत का धारक गृहस्थ हू पन्च भावना निरन्तर भावता रहै। व्यसनी मनुष्य तथा दुष्ट मनुष्य तथा तीव्रकषायी कलह का करनेवाला पुरुषनिकरि शून्य मकान होय तहाँ बसने का भाव राखै, जातें तीव्रकषायी दुष्टनि के नजीक बसने में परिणाम की शुद्धता नष्ट हो जाय, दुर्ध्यान प्रकट हो जाय, तातैं पापीनि करि शून्य मकान में बसना, सो ही शून्यागार भावना है। बहुरि जिस मकान में अन्य दूजा का झगड़ा नाहीं होय तहाँ निराकुल बसना, सो विमोचितावास है॥ २॥ बहुरि अन्य के मकान में आप जबरीतैं नाहीं धंस बैठना, सो परोपरोधाकरण भावना है॥ ३॥ बहुरि अन्याय अभक्ष्य कूं त्यागि भोगान्तराय का क्षयोपशम के आधीन मिलया जो रस नीरस भोजन तामें समता धारि लालसा रहित भोजन करना, सो भैक्ष्यशुद्धि भावना है॥ ४॥ साधर्मी पुरुष में वाद विसम्वाद नाहीं करना, सो साधर्मी विसम्वाद भावना है॥ ५॥ ऐसैं अचौर्य अणुव्रत के धारकनि कें पन्च भावना भावने योग्य हैं।

जिज्ञासा : जिनबिम्ब का अभिषेक कितनी बार किया जाना उचित है?

समाधान : इस प्रश्न का समाधान किसी भी श्रावकाचार आदि में मुझे दृष्टि गोचर नहीं हुआ। अत: अन्य आधारों से इस प्रश्न का समाधान खोजते हैं-

१.आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के द्वारा गृहस्थ अवस्था में लिखे गये हितसंपादक में पृष्ठ ३० पर इस प्रकार कहा है, 'मतलब यह है कि भगवान की प्रतिमा का अभिषेक करने की प्रथा आज तो कुछ और ही तरह की हो गई है, जो भाई जब चाहे, जब अभिषेक कर लिया करते हैं, एक बार ही नहीं दिन में अनेक बार भी कर लेते हैं। जितने पूजक हों वे सभी पूजा करने से पूर्व में श्री भगवान की प्रतिमा जी का अभिषेक करें, यह एक नियम बताया जाता है। यह बात ठीक नहीं है। प्रतिमा का अभिषेक एक बार ही होना चाहिए।'

२. पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने श्री गुलाब चन्द्र जी, पटना वाले (सागर) के, एक इसीप्रकार के प्रश्न के उत्तर में, इस प्रकार कहा था, 'जिस वेदी पर अभिषेक होने के उपरान्त पूजा प्रारम्भ हो चुकी हो वहाँ दुबारा अभिषेक नहीं होना चाहिए। जिनको अभिषेक का नियम है वे या तो अभिषेक के समय पर मंदिर जी आवें या फिर उस वेदी पर अभिषेक करें जहाँ अभी पूजा प्रारंभ न हुई हो। अन्यथा पूजकों को व्यवधान होता है।'

३. क्षुल्लक मनोहरलाल जी वर्णी ने मोक्षशास्त्र पुस्तक २२ में लिखा है कि, 'जिनप्रतिमा का अभिषेक एक बार ही करना चाहिए बार-बार नहीं।'

आजकल इस प्रश्न पर बहुत से मंदिरों में विसम्बाद सुनने में आता है। ऐसे मंदिरों के आयोजकों से निवेदन है कि वे सभी पूजकों की सहमति से अभिषेक का समय निर्धारित करें। और सभी पूजकों का कर्त्तव्य होता है कि वे निर्धारित समय पर आकर अभिषेक कर लिया करें। वास्तव में जिनबिम्ब का अभिषेक एक बार ही होना उचित है।

जिज्ञासा : ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु पल्य का आठवां भाग है या साधिक पल्य का आठवां भाग?

समाधान : ऐसा प्रतीत होता है कि आपने तत्वार्थसूत्र अध्याय ४ में सूत्र ४० और ४१ को लेकर उपरोक्त प्रश्न किया हो। तत्वार्थसूत्र अध्याय ४ के ४० वें सूत्र 'ज्योतिष्काणां च' के अनुसार ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक कही गई है। इसके बाद सूत्र नं. ४१ 'तदष्टभागो परा:' का अर्थ सर्वार्थसिद्धिकार ने किया है कि 'तस्यपल्योपमस्याष्ट भागो ज्योतिष्काणां अपरा स्थिति' अर्थात् ज्योतिषियों की जघन्य स्थिति उसका अर्थात् पल्योपम का आठवां भाग है। इस सूत्र का अर्थ पढ़ते समय ऐसा भी अर्थ बनता है कि तत् अर्थात् उस साधिक पल्योपम का आठवां भाग जघन्य स्थिति होनी चाहिए। हमें सिर्फ इस पर विचार करना है कि ज्योतिषियों की जघन्य स्थिति पल्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का आठवां भाग है या साधिक पल्य का आठवां भाग।

१. सर्वार्थसिद्धिकार के अनुसार तो पल्य का आठवां भाग ही कहा गया है।

२. राजवार्तिककार ने भी वार्तिक ८ में पल्य का आठवाँ भाग ही जघन्य स्थिति स्वीकार की है।

३. श्लोकवार्तिककार ने भी तत्वार्थसूत्र ४/४१ की टीका में पल्य का आठवाँ भाग ही जघन्य आयु स्वीकार की है।

४. तत्वार्थवृत्तिकार श्रुतसागर सूरि ने भी पल्य का आठवाँ भाग ही जघन्य स्थिति स्वीकार की है।

५. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ७ की गाथा ६२० में पल्य का आठवां भाग ही कही है।

६. श्री त्रिलोकसार में गाथा ४४६ में भी जघन्य आयु १/८ पल्य प्रमाण कही है।

७.सिद्धान्तसार संग्रह (आ. नरेन्द्रसेन विरचित) के आठवें अध्याय के ५० वें श्लोक में इस प्रकार कहा है-

एकपल्योपमः कालस्तेषां समधिकः कियान्।
आयुरुत्कृष्टमाख्यातं तदष्टांसो जघन्यकम्॥५०॥

अर्थ- ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम और कुछ अधिक है और जघन्य आयु पल्योपम का अष्टमांश है॥५०॥

८. श्री सिद्धान्तसार दीपक अधिकार १४ के ११८ वें श्लोक में जघन्य आयु १/८ पल्य प्रमाण कही है।

९. हरिवंशपुराण सर्ग ६, पेज १२१, श्लोक ९ में जघन्य आयु पल्य के आठवाँ भाग कही है।

१०. मूलाचार गाथा ११२० के अनुसार भी ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु पल्य के आठवें भाग कही है।

यद्यपि तत्वार्थसूत्र अध्याय ४/४१ के तत् शब्द से तथा सिद्धान्तसार संग्रह के उपरोक्त प्रमाण में तत् शब्द से साधिक पल्य का आठवाँ भाग ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु किसी भी अन्य आचार्य ने पल्याधिक का आठवाँ भाग ग्रहण नहीं किया है। अतः ज्योतिषियों की जघन्य आयु पल्य का आठवां भाग ही मानना उचित प्रतीत होता है।

प्रश्नकर्ता : मूलचन्द्र जी, नागपुर

जिज्ञासा : चा.च. आचार्य शांतिसागर जी महाराज के मुनिदीक्षा गुरु कौन थे?

समाधान : आपके प्रश्न का उत्तर अभी तक किसी को स्पष्ट नहीं। पूज्य आचार्य श्री को मुनि दीक्षा किन आचार्य ने दी, इस संबंध में निम्नप्रकार तीन प्रमाण मिलते हैं।

१. चारित्र चक्रवर्ती लेखक पं. सुमेरचन्द्र जी दिवाकर पृष्ठ ७१-७२ के अनुसार यरनाल में पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर, निर्ग्रन्थ मुनि देवेन्द्रकीर्ति ने, तप कल्याणक के मंगल दिन, आपको ऐलक से मुनि बनाया। (जिनदीक्षा प्रदान की)

२. चारित्र चक्रवर्ती ग्रंथ के अंत में श्रमणों के संस्मरण छपे हैं। उनमें पूज्य आचार्य श्री के गृहस्थ अवस्था के बड़े भाई मुनि वर्धमानसागर जी के संस्मरणों में पृष्ठ ४१० पर लिखा है, 'आचार्य महाराज ने भौंसेकर आदिसागर मुनिराज से यरनाल में मुनि दीक्षा ली थी।'

मुनिश्री वर्धमानसागर जी के दीक्षा गुरु आ. शांतिसागर जी महाराज थे। तथा ये गृहस्थ अवस्था के भी बड़े भाई थे, अतः इनके कथन को अप्रमाणिक कैसे कहा जा सकता है?

३. चारित्र चक्रवर्ती ग्रंथ (लेखक : पं. सुमेरचन्द्र जी दिवाकर) का प्रथम संस्करण १९५३ में छपा था। इससे पूर्व के छपे हुए जैन गजट हीरक जयंती विशेषांक (१३.६.५२ को छपा) के पृष्ठ २७ पर लिखा है, 'यरनाल गाँव में पंचकल्याणक महोत्सव के बीच मुनि दीक्षा उन्हीं साधु सिद्धसागर से ली थी।' पृष्ठ ७६ पर श्री परसादीलाल जी पाटनी के लेख 'तेजस्वी जीवन का उत्कर्ष' में लिखा है कि यरनाल में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर, जिनसे क्षुल्लक दीक्षा ली थी, उन्हीं मुनि सिद्धसागर से फागुनी सुदी १३ सं. १९७७ को साधु दीक्षा ग्रहण की।

इस प्रकार उपरोक्त तीन प्रमाणों के अनुसार चा.च. आचार्य श्री के दीक्षा गुरु के रुप में मुनि देवेन्द्रकीर्ति महाराज, मुनि आदिसागर जी भौंसेकर तथा मुनि सिद्धसागर ये तीन नाम प्राप्त होते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि जब २० वीं शताब्दी के प्रसंगों में इतनी विविधता है, तो प्राचीन इतिहास के प्रसंगों को कितना सत्य कहा जाये?

१/२०५, प्रोफेसर कॉलोनी,
आगरा -२८२ ००२

जिनभाषित के लिए प्राप्त दानराशि

श्री कैलाशचन्द जी काला, सांभार का दिनांक २४.४.२००४ को स्वर्गवास होने पर उनकी पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र चि. वर्धमान, सुशीलकुमार, निर्मलकुमार काला द्वारा ५००/- रुपये प्राप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंटरनेट पर 'जैन समाज'

सीमा जैन एवं दीपेश जैन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा अपनी समाज में वह प्रभुत्व चाहता है। इस प्रभुत्व को प्राप्त करने के लिये कुछ मनुष्य धनबल का, कुछ बाहुबल का, कुछ सत्ता का तथा कुछ ज्ञानबल का प्रयोग करते हैं। मनुष्य को **ज्ञानबल की प्राप्ति** समाज से प्राप्त **सूचनाओं,** गुरुजनों से प्राप्त **तर्कशक्ति** एवं स्वयं में विकसित की गई **स्मृतिशक्ति** के सम्मिलित प्रयोग से प्राप्त होती है। मनुष्य को प्राप्त होने वाली **सूचनाओं का सबसे बड़ा माध्यम पुस्तकें तथा पुस्तकालय है।** पुस्तकों के अध्ययन से प्राप्त होने वाली सूचनायें तथ्य परख एवं सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है जबकि अनुभवों से प्राप्त सूचनाओं की सामाजिक मान्यता पर हमेशा संदेह रहता है।

पुस्तकालयों/ग्रन्थालयों के वर्तमान स्वरूप में पाठक को सूचनाओं के संग्रह में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। किस विषय वस्तु को किस ग्रन्थ में ढूंढा जाये अथवा कौन-कौन से ग्रन्थ विषय वस्तु से संबंधित हैं। इत्यादि प्रश्नों के हल ढूंढने में ही सर्वाधिक समय व्यर्थ हो जाता है, अब इन समस्याओं को दूर करने के लिये प्रोद्योगिकी का सहारा लिया गया। यही आज हमारे सामने सूचना प्रोद्यौगिकी के रूप में उपलब्ध है।

सूचना प्रोद्योगिकी के इस युग में जहाँ एक ओर पुस्तकालयों में कम्प्यूटरों के प्रयोग से संदर्भ प्रणाली को सुव्यवस्थित किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर इंटरनेट के माध्यम से पुस्तकालयों की संदर्भ सामग्री को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है। **इंटरनेट विश्व का सबसे बड़ा संदर्भ ग्रन्थालय** है, जिसमें सैकड़ों देशों के हजारों सरवर कम्प्यूटर्स, चौबीसों घण्टे, करोड़ों लोगों तक सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिये परस्पर कार्य करते रहते हैं।

जैन पुस्तकालय एवं जैन साहित्य के प्रति मेरी जिज्ञासा ने **इंटरनेट पर 'जैन समाज, इतिहास, साहित्य एवं तीर्थ क्षेत्रों',** जैसे विषयों को ढूँढने के लिये प्रेरित किया। इस अध्ययन के कुछ रोचक तथ्य निम्न हैं

जैन समाज डॉट ओआरजी (WWW.jainsamaj.org) नामक वेबसाइट अहिंसा फाउण्डेशन का प्रतिनिधित्व करती है। इस वेबसाइट पर जैन मंदिरों, सन्तों तथा अहिंसा फाउण्डेशन के सदस्यों एवं उद्देश्यों से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध है। इस साइट पर वैवाहिक एवं जैन व्यवसाय डायरेक्टरी भी उपलब्ध है। वेबसाइट के सम्पर्क सूत्र श्री पी.एल.जैन हैं। इस वेबसाइट के माध्यम से अन्य करीब ९० वेबसाइटों (सूची संलग्न) पर पहुँचा जा सकता है जो कि जैनियों से सम्बन्धित जानकारी रखती हैं।

जैना डॉट ओआरजी (WWW.jaina.org) नामक वेबसाइट उत्तरी अमेरिका के जैन संगठनों का प्रतिनिधित्व करती है। सन् १९८१ में आचार्य सुशील कुमार जी एवं गुरुदेव चित्रभानूजी के आशीर्वाद से जैना (JAINA : Jain Associations in North America) नामक संस्थान की शुरुआत की गई थी एवं आज इसके ५७ केन्द्र हैं। यह वेबसाइट जैना संगठन के उद्देश्यों तथा गतिविधियों पर केन्द्रित है। इस वेबसाइट पर अहिंसा और शाकाहार को बढ़ावा देना, जैन मंदिरों के सजीव चित्रण और आन लाइन जैन पाठशाला आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

याहू डॉट कॉम (yahoo.com) के अन्तर्गत जैनियों के कई समूह (Groups) मौजूद हैं। इनमें से जैननेट, जैनसमाचार, सम्यक ज्ञान, जैनलिस्ट, जैनफ्रेन्डस, जैनबन्धु इत्यादि प्रमुख हैं।

जैन वर्ल्ड डॉट कॉम (WWW.jainworld.com)नामक वेबसाइट में जैन मैंग्जीन्स की सूची, जैन पुस्तकों की सूची तथा पाठ्य सामग्री, बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक के लिए जैन धर्म की शिक्षा, जैनइज्म का विभिन्न क्षेत्रों में योगदान तथा जैन साहित्य और अहिंसा धर्म पर सचित्र विवरण आदि को सम्मिलित किया गया है।

जैन जगत डॉट कॉम (WWW.jainjagat.com) नामक वेबसाइट पर जैन मंदिरों की धार्मिक गाइड के रुप में इण्टरनेट पर उपलब्ध है। इन वेबसाइट पर ५०० से अधिक जैन मंदिरों की वर्णानुक्रम में सूची एवं जानकारी उपलब्ध है। जैन मंदिरों के सन्दर्भ में तीर्थंकरों, स्थापना दिवस तथा स्थानों के बारे में जानकारी दी गई है।

जैन तीर्थस डॉट कॉम (www.jaintirths.com)नामक वेबसाइट पर प्रत्येक प्रदेश तथा उसके अन्तर्गत आने वाले सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र एवं प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों की जानकारी दी गई है। प्रत्येक तीर्थ स्थान के सम्बन्ध में सचित्र जानकारी इस साइट पर उपलब्ध है। इस साइट पर विदेशों में स्थित जैन मंदिरों को भी सम्मिलित किया गया है। तीर्थ स्थानों का रोड मेप भी उपलब्ध है। इस साइट पर भक्तामर स्त्रोत्र को अर्थ सहित सुन व पढ़ (audio&video)सकते हैं।

जैनहेरीटेजसेन्टर्स डॉट कॉम (WWW.jainheritage centres.com)नामक वेबसाइट पर भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में जैन धर्म से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी जैसे - इतिहास, तीर्थंकर, मंदिर, उत्सव, कला, लेख, धर्मशाला इत्यादि के संदर्भ शामिल करने की कोशिश की गयी है।

जेसीजीबी डॉट ओआरजी (WWW.jcgb.org) नामक वेबसाइट अमेरिका के बोस्टन इलाके में स्थित जैन समुदाय केन्द्र का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें जैन सेन्टर ऑफ ग्रेटर बोस्टन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदस्यों, गतिविधियों, संगीत तथा प्रबंधन की जानकारी दी हुई है। इस साइट पर उपलब्ध जैन कैलेण्डर के द्वारा जैन व्रत तथा त्यौहारों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जैन वैवाहिकी के सम्बन्ध में एक अलग वेबसाइट जैनटूजैन डॉट ओआरजी (WWW.jain2jain.org) इंटरनेट पर मौजूद है। इनके अलावा जैन मेटरीमोनियलस डॉट कॉम (WWW.jainmatrimonials.com) जैन कनेक्शनस् डॉट कॉम (jainconnections.com)शादी डॉट कॉम (WWW.shaadi.com) इण्डियामैच डॉट कॉम (WWW.indiamatch.com) सखी डॉट कॉम (WWW.sakhi.com)आदि साइटस पर भी जैन वैवाहिकी सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध है।

जैन धर्म आज विश्व में सबसे सक्रिय धर्म है जहाँ दूसरे धर्म मंदिर-मस्जिद के विवादों में उलझे हुए हैं वही जैन धर्म ने पिछले दस वर्षों में जन सामान्य को अनेकों संस्कार दिये हैं। शाकाहार, स्वास्थ्य के लिये पानी छानकर पीने से लेकर, दिन में विवाह, गौहत्या पर प्रतिबंध तथा गौशालाओं की स्थापना या फिर जन सामान्य के लिये भाग्योदय तीर्थ अस्पताल (सागर म.प्र. जैसे अनेकों प्रसंग हमारे जीवन का अभिन्न अंग हैं। जैन धर्म के अहिंसा शब्द से ही हमने आजादी प्राप्त की है। इतनी भव्यता के बाद भी जैन धर्म की सही छवि इतिहास में दर्ज नहीं है। आज जब जैन धर्म एक संस्कृति का रूप लेते हुए सभी धर्मों के लिये सर्वमान्य हो रहा है तो ऐसे समय में हम सभी का कर्त्तव्य है की हम इसे आधुनिक तकनीक के सहारे जन-जन तक पहुँचायें।

सूचना क्राँति के इस युग में अत्याधुनिक तकनीक का उपयोग करते हुए यदि हम सूचनाओं को जन सामान्य तक पहुँचाते हैं तथा उनकी योजना बनाने एवं निर्णय लेने की क्षमता में सहयोग करें तो निश्चय ही हम समाज के लिये एक सूत्रधार के तौर पर बहुत कुछ योगदान कर पायेंगे।

कुछ प्रमुख वेबसाइटों की सूची

jainsamaj.org
jainworld.com
jainjagat.com
jcgb.org
jaina.org
jaintirths.com
atmadharma.com
arham.com
globaljains.com
hindujaintemple.com
jcnc.org
ahimsa.com
atmasiddhi.com (Book)
anekant.org
jainheritagecentres.com
jainshala.com
jain2jain.com
jainmetrimonial.com
jainnet.com
vegeats.com ...etc.

इंटरनेट पर 'जैन समाज' से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए आप हमसे सम्पर्क कर सकते हैं या हमारे सेन्टर पर आकर इंटरनेट से जुड़कर आप स्वयं अपने प्रश्नों के उत्तर पा सकते हैं। हमारी तरफ से इंटरनेट पर 'जैन समाज' से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी आपको निशुल्क प्रदान की जायेगी और न ही आपको इन्टरनेट या अन्य कोई शुल्क देना होगा।

डिजिटल टैक्नॉलोजी एवं सर्विस,
३०२, सतना बिल्डिंग, जबलपुर

गीत

सुबह-सुबह छा रही उदासी, संध्या आने वाली है।
बैठ मुसाफिर बाँध पुटरिया, गाड़ी जाने वाली है॥
खेल-कूद में बचपन बीता, गई जवानी काम में।
गिरा बुढ़ापा समय गुजारा, बिस्तर पर आराम में॥
खुद से बात नहीं कर पाया, माया में इतना भरमाया।
दर्पण चिढ़ा रहा है तुझको, काजल देता गाली है॥
गाड़ी जाने.....
कौन तुम्हारा संगी साथी, कौन तुम्हारा अपना है।
मतलब के रिश्ते-नाते सब, दुनिया छल है सपना है॥
तूने जो जागीर बनाई, तेरे काम नहीं आ पाई।
तृप्ति मिली है कहीं भोग में, दर-दर खड़ा सवाली है॥
गाड़ी जाने .....
मुट्ठी बंधी हुई आया था, हाथ पसारे जाना है।
सांसों की फुलझड़ी झड़ी सब, यहीं पड़े रह जाना है॥
जाना सबकी मजबूरी है, कदम दो कदम की दूरी है।
चिन्ता मत कर यहाँ जगह की, पूरा डिब्बा खाली है॥
गाड़ी जाने वाली है.....

पथिक
१७२, दुर्गा मार्ग, विदिशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय साधना में 'मन' की अवधारणा

डॉ. श्रीमती पुष्पलता जैन

भारतीय अध्यात्म-साधना का केन्द्र 'मन' है। इस साधना में मन की शक्ति अचिन्त्य है। वह संसार भ्रमण और मोक्ष दोनों का कारण है। मन को सांसारिक विषय-वासनाओं की ओर से हटाकर जब उसे आत्मा में ही स्थिर कर देते हैं तो वह योगयुक्त अवस्था कही जाती है (गीता ६.१८.१०)। कठोपनिषद् में इसी को परमगति कहा गया है। मन , वचन और काय से युक्त जीव का वीर्य परिणाम रूप प्राणियोग कहलाता है और यही योग मोक्ष का कारण है (योगशास्त्र १.१५)। इसीलिए योगीन्दु ने उसे पंचेन्द्रियों का स्वामी बताया है और उसे वश में करना आवश्यक कहा है-

पंचह णायहुं वसिकरहु जेण होती वसि अण्ण।
मूल विणट्ठइ तरुवरह, अवसइ, सुक्कहि पण॥

(परमात्म प्रकाश, १४०, पृ. २८३)

मन की गति चूँकि तीव्रतम होती है इसलिए उसे वश में करना साधक के लिए अत्यावश्यक है। मन की चंचलता-शिथिलता साधना को डगमगाने में कारणभूत है। शायद यही कारण है कि हर साधना में मन को वश में करने की बात कही है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि संसारी व्यक्ति के मन को जिस ओर जाने से रोका जाता है, वह उसी ओर दौड़ता है। जिस सांसारिक पदार्थों से उसने कष्ट पाया है, उसी में वह प्रीति करता है।

संत कबीर ने माया और मन के संबंध को अविच्छिन्न कहकर उसे सर्वत्र दु:ख और पीड़ा का कारण कहा है-

मन पाँचों के बसि परा, मन के बस नहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौ लगि, जित भाखू तित आँच॥

(कबीरवानी पृ.६)

यह माया मन को उसी प्रकार बिगाड़ देती है जिस प्रकार कांजी दूध को बिगाड़ देती है (संत दादूदयाल भाग १, पृ. ११८)। एक अन्य पद में कबीर मन को संबोधित करते हुए कहते हैं- हे मन! तू व्यर्थ भ्रमण करता फिरता है? तू विषयानंदों में लिप्त है, फिर भी तूझे संतोष नहीं। तृष्णाओं के पीछे बावला बना फिरता है। मनुष्य जहाँ भी पग बढ़ाता है, उसे माया-मोह का बंधन जकड़ लेता है। आत्मारूपी स्वच्छ स्वर्णथाली को उसने पापों से कलुषित कर लिया है-

काहे रे मन दह दिसि धावौ,
बिषिया संगि संतोष न पावे।
जहाँ-जहाँ कल्प, वहाँ-वहाँ बंधनो,
रतन को थाल कियौ ते रंधनों॥

(कबीर ग्रंथावली, पद ८७)

ठीक इसी प्रकार की विचारसरणी कविवर बनारसीदास और बुधजन जैसे जैन अध्यात्मसाधक कवियों ने भी अभिव्यक्त की है। तुलसीदास के समकालीन बनारसीदास ने मन को 'जहाज' का रूपक देकर उसके स्वभाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'जिस प्रकार किसी व्यक्ति को समुद्र पार करने के लिए एक ही मार्ग रहता है जहाज, उसी तरह भव समुद्र से मुक्त होने के लिए ज्ञानी साधक को मन रूपी जहाज का आश्रय लेना पड़ता है।' (बनारसी विलास, पृ. १५२-५३)। भक्त शिरोमणि सूरदास ने भी-

'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। जैसे उड़ि जह
को पंछी, पुनि जहाज पर आवै'

आदि कहकर इसी बात की पुष्टि की है और मन को भ्रम अथवा दुबिधा का घर माना है।

सभी संतों को इसकी बड़ी चिंता है कि इस मन की दुविधा कब मिटेगी और कब वह सद्गुरु के वचन अपने घट के अंदर धारण करेगा, कब धन की तृष्णा दूर होगी, कब वह धर्म के मर्म को पहचानेगा ओर कब परमार्थ सुख को प्राप्त करेगा।

महाकवि तुलसीदास और भैया भगवतीदास दोनों ही इस संसारी मन को मूढ़ (मूर्ख) की संज्ञा देते हुए सीख देते हैं-

'रे मन मूढ सिखवन मेरी'। (२) ऐसी मुढ़ता या मन की। परिहरि राम-भक्ति, सुर-सरिता, आस करत ओसकन की॥' (विनयपत्रिका)। तू अपने चेतन स्वरूप को भूलकर इस संसार में कहाँ भटक गया है। यह तो मात्र व्याधि का घर है। तुम्हें तो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, विषय-सुख आदि विकारों को तिलांजलि देकर अविनाशी ब्रह्म की आराधना करनी चाहिए (चेतन कर्म चरित्र, पृ. २३४-२४६)।

एक अन्य रचना 'पंचेन्द्रिय संवाद' में भैया भगवतीदास ने मन के दोनों पक्षों को बड़ी सुघड़ता से रखा है-

(१) मन से ही कर्म क्षीण होते हैं, करुणा पुण्य होता है और आत्मतत्व पहचाना जाता है, इसलिए मन इन्द्रियों का राजा है और इन्द्रियाँ मन की दास हैं।

(२) रे मन! तू व्यर्थ में गर्व मत कर। तुम्हारे कारण ही प्राणी नरक में जाता है, पाप करता है तब उसका अनुमोदन करता है, इन्द्रियाँ तो शरीर के साथ ही बैठी रहती हैं पर तू दिन-रात इधर-उधर भटकता रहता है जिससे दुष्कर्म बंधते जाते हैं, इसलिए रे मन, तू राग-द्वेष को दूर कर परमात्मा में अपने को लगाओ। 'मन बत्तीसी' में भैया भगवतीदास ने मन के चार प्रकार बताये हैं- सत्य, असत्य, अनुभय और उभय। प्रथम दो प्रकार संसार की ओर मन का झुकाते हैं और शेष दो प्रकार भवपार कराते हैं- 'मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि ब्रह्म में लग गया तो अपार सुख का कारण बनता है, पर यदि भ्रम में लग गया तो अपार दुःख का कारण सिद्ध होगा। इसीलिए त्रिलोक में मन से बली और कोई नहीं-

मन सों बली न दूसरौ, दैख्यौ इहि संसार,
तीन लोक में फिरत ही, जतन लागै बार।
मन दासन को दास है, मन भूपन को भूप
मन सब बातनि योग्य है, मन की कथा अनूप।
इसीलिए जब मन मूँधौं ध्यान में, इन्द्रिय भई निरास
तब इह आतम ब्रह्म ने, कीने निज परकास॥

(ब्रह्मविलास)।

इतना ही नहीं, अधिकांश संतों ने 'मन' को 'करहा' (हाथी) की उपमा दी है-

'मन करहा भव बनिमा चरइ, तदि विष-वेल्हारी बहुत।
वहँ चरहँ बहु दुखु पाइयउ, तब जानहु गौ मीत॥'

(कवि ब्रह्मदीप)

अर्थात् इस सांसारिक विषयवासना में शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं होगी इसलिए रे मूढ़। इस मन रूपी हाथी को विन्ध्य की ओर जाने से रोक, नहीं तो यह तुम्हारे शील रूपी वन को तहस-नहस कर देगा।

'मन' के संदर्भ में अध्यात्मक साधक कवि भूधरदास ने मन को 'सुआ' और परमात्म पद को 'पिंजरा' का रूपक देकर सुआ के पिंजरे में बैठने की सलाह दी। आगे भी मन को मूर्ख कहकर हंस के सांगरुपक द्वारा उसे सांसारिक विषय वासनाओं से विरक्त रहने का उपदेश दिया है और परमात्म-पद में बैठकर सद्गुरु के वचन रूपी मोतियों को चुनने की सलाह दी है- 'मन हंस, हमारी ले शिक्षा हितकारी' (भूधर-विलास, पद ३३)

'मन' की पहेली को कवि दौलतराम ने समझा तो वे कह उठे- 'रे मन, तेरी को कुटैव यह।' तेरी यह कैसी प्रवृत्ति है कि तू सदैव इन्द्रिय सुखों में लगा रहता है। इन्हीं के कारण तू निज स्वरूप को पहचान नहीं सका और शाश्वत सुख को प्राप्त नहीं कर सका। (अध्यात्म पदावली, पद १) इसीलिए कविवर द्यानतराय जैसे सभी संत मन को संतोष धारण करने का उद्बोधन देते हैं और उसी को सबसे बड़ा धन मानते हैं-

१. 'गाहु संतोष सदा मन रे, जा सम और नहीं घर रे'

(द्यानतराय)

२. 'गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।'

(रहीम)

३. 'रे मन करहुँ सदा संतोष।' (बनारसीदास)

४. 'रे मन भज-भज दीनदयाल।
जाके नाम लेत इक छिन में, कटें कोटि अघजाल।'

(द्यानतराय)

वस्तुस्थिति तो यह है कि मन की चंचलता को तो हम सभी स्वीकार कर लेते हैं, पर मन से मन की साधना भी की जाती हैं, इसे भूल जाते हैं। मन द्वारा मन को समझाने पर चरम सत्य की उपलब्धि होती है। चंचल मन को निश्चल करने पर ही राम-रसायन का पान किया जा सकता है। कबीर ने कहा भी है-

'यह काचा खेल न होई, जन षट्तर खेले कोई।
चित्त चंचल निहचल कीजे, तब राम रसायन पीजै॥'

इसीलिए कबीर ने मन को संयमित रखने की सलाह देते हुए कहा है-

'मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार हैं, ते साधु कोई एक॥'

(कबीर ग्रंथावली)

इस प्रकार मन की महत्ता न केवल दर्शन, मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा जैसे विषयों तक सीमित है, वरन् अध्यात्म की दृष्टि से मन के नकारात्मक और सकारात्मक पक्षों का महत्व कहीं अधिक है। मन का नकारात्मक पक्ष जहाँ साधक के आध्यात्मिक विकास में बाधक है, वहीं उसका सकारात्मक पक्ष भगवत्-भक्ति में साधक को प्रवृत्त करके अलौकिक आनंद की उपलब्धि कराता है। आइये, आज हम सब अपने मन को संतुलित कर पर्यावरण को प्रदूषित होने से रोकें और संतोषी प्राणी बनने का प्रयास करें।

तुकाराम चाल
सदर एक्सटेंशन, नागपुर (महाराष्ट्र)

आचार्य श्री विद्यासागर जी के सुभाषित

- जीवन में ज्ञान का प्रयोजन मात्र क्षयोपशम में वृद्धि नहीं वरन् विवेक में भी वृद्धि हो।
- ज्ञान रूपी दीपक में संयम रूपी चिमनी आवश्यक है अन्यथा वह राग द्वेष की हवा से बुझ जायेगा।
- दीपक लेकर चलने पर भी चरण तो अन्धकार में ही चलते हैं। जब चरण भी प्रकाशित होंगे तब केवलज्ञान प्रगट होगा।
- प्रयोग (अनुभव) के अभाव में बढ़ा हुआ मात्र शाब्दिक ज्ञान अनुपयोगी व्यर्थ ही साबित होता है।
- स्वस्थ ज्ञान का नाम ध्यान है और अस्वस्थ ज्ञान का नाम विज्ञान।
- ज्ञान स्वयं में सुखद है किन्तु जब वह मद के रूप में विकृत हो जाता है तब घातक बन जाता है।

'सागर बूंद समाय' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला के प्रकाशन

परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज द्वारा सस्ते साहित्य प्रकाशन के लिये आशीर्वाद एवं बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुये। जिसकी पूर्ति के लिये सुनामधन्य रत्नव्यवसायी श्री विवेक जी काला ने श्री विद्याविनोद काला मेमोरियल ट्रस्ट, जयपुर से ग्रन्थ के प्रकाशन में अर्थ सहयोग प्रदान किया। इस क्रम में आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला के प्रकाशन भक्तिमंजूषा,संस्कार सुबोध, [कुन्दकुन्द का कुन्दन, लागत मूल्य २०/-, विक्रय मूल्य १०/-, डाक खर्च ३/-], [मानव धर्म - लागत मूल्य ५०/-, विक्रय मूल्य २५/-, डाक खर्च ७/-], [जैनधर्म की मौलिक विशेषताएँ - लागत मूल्य ३०/-, विक्रय मूल्य १५/-, डाक खर्च ३/-] आदि साहित्य उपलब्ध है।

प्राप्तिस्थान :

आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

जैन नशिया रोड, सांगानेर - ३०३ ९०२ जयपुर (राजस्थान)

सम्पर्क सूत्र

ब्र. भरत, सम्पादक जैन ग्रन्थमाला

श्री माणिकचंद जी पाटनी का स्वर्गवास

सिद्धोदय सिद्ध क्षेत्र नेमावर के प्रणेता व स्वतंत्रता संग्राम सेनानी गांधीवादी विचारधारा के समर्थक, मुनिभक्त, धर्म से जीवन पर्यन्त जुड़े रहते श्री माणकचंद जी पाटनी का दिनांक १३.०४.०४ को ८२ वर्ष में स्वर्गवास हो गया।

महेन्द्र अजमेरा, हरदा

आचार्य विद्यासागर निलय का उद्घाटन

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन शांतिनिकेतन उदासीन आश्रम, इसरी बाजार में श्रीमान माणिकचंद जी गंगवाल (राँची), श्रीमान हरिप्रसाद जी पहाड़िया (कतरासगढ़), श्रीमान मोहनलाल जी पाटोदी (कतरासगढ़) एवं श्रीमान शांतिलाल जी रारा (धुलियान, मुर्शीदाबाद) के सहयोग से आधुनिक सुविधायुक्त कमरों का निर्माण हुआ है जिसका नाम 'आचार्य विद्यासागर निलय' रखा गया। इसका शुभ उद्घाटन दिनांक २५ अप्रैल २००४ को आदरणीय बा.ब्र. श्री पवन भैया, बा. ब्र. श्री कमल भैया के सान्निध्य में श्रीमान महावीरप्रसाद जी सोगानी (राँची) के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

षष्ठ आत्मसाधना शिक्षणशिविर सम्पन्न

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन शांतिनिकेतन उदासीन आश्रम, इसरी में दिनांक २५ अप्रैल से २ मई ०४ तक षष्ठ आत्मसाधना शिक्षणशिविर का आयोजन पं. श्री मूलचन्द जी लुहाड़िया के निर्देशन एवं बा. ब्र. श्री पवन भैया एवं बा.ब्र. श्री कमल भैया के सान्निध्य में हुआ।

अगला सप्तम शिविर दिसम्बर २००४ में इसरी में लगाया जायेगा, जिसकी सूचना आगे दी जायेगी।

शांति लाल जैन

मंत्री- उदासीन आश्रम, इसरी

वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न

श्री आदिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र घाटोली (रामगंजमण्डी)राज. में पं. पवनकुमार शास्त्री 'दीवान' के प्रतिष्ठाचार्यत्व में दिनांक ८-९ मई २००४ को भव्य समारोह पूर्वक वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

अरिहंत सिंघई, मोरेना (म.प्र.)

'स्वतंत्रता संग्राम में जैन' ग्रन्थ का नया संस्करण शीघ्र

खतौली। गत वर्ष हमारे वृहद् ग्रन्थ 'स्वतंत्रता संग्राम में जैन' का प्रकाशन हुआ था। इस संस्करण में प्रमाणादि का अभाव होने से कुछ सेनानियों का परिचय नहीं आ पाया था। प्रकाशन के बाद इनके प्रमाण मिले तथा पाठकों ने भी अनेक जेलयात्रियों/शहीदों के परिचय हमारे पास भेजे हैं इन सबको जोड़कर प्रथम खण्ड का परिवर्धित संस्करण शीघ्र प्रकाशित होगा। पाठकों से निवेदन है कि इस विषय की कोई सामग्री हो तो भेजकर उपकृत करें।

डॉ. श्रीमती ज्योति जैन

कुन्दकुन्द महाविद्यालय परिसर, खतौली

नि:शुल्क मंगायें

अहिंसा व शाकाहार के सम्बन्ध में साहित्य एवं प्रचारसामग्री का प्रकाशन किया गया है। सभी इच्छुक महानुभावों से निवेदन है कि साहित्य ५/- रुपये का डाक टिकिट भेजकर नि:शुल्क मंगवालें।

पता :-डॉ. ताराचन्द जैन बख्शी

अखिल विश्व जैन मिशन

बख्शी भवन, न्यू कॉलोनी, जयपुर

डॉ. बख्शी अमृत महोत्सव

योगाचार्य, समाजरत्न, ब्रह्मचारी, कर्मयोगी डॉ. ताराचन्द्र जैन बख्शी के ८५ वें वर्ष सन् २००४ में 'अमृत महोत्सव' आयोजित किया गया है।

विद्वानों एवं शुभचिन्तकों से डॉ. बख्शी के जीवन पर आधारित लेख, संस्करण आमंत्रित किये जाते हैं।

ओम प्रकाश जैन, संयोजक

बख्शी भवन, न्यू कॉलोनी, जयपुर

एक योगी जो वन में रमते हैं

सन् १९६१ में कर्नाटक के जुगूल गाँव में जन्मे धरणेन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमार आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित होकर मुनिश्री चिन्मय सागर बने हैं। वे गुरु आज्ञा से ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करते हैं। कन्नड़ भाषी होने के बावजूद वे हिन्दी के पुरोधा हैं। उनके प्रवचन धर्म, दर्शन, आध्यात्म से परिपूर्ण रहते हैं।

स्वभाव से सरल संत श्री के साथ अनेकानेक अविश्वसनीय परंतु पूर्णत: सत्य चमत्कारिक घटनाएँ घट चुकी हैं- 'भाटापारा में २७ मिनिट तक संत श्री पर केशर की वर्षा जिसे हजारों लोगों ने देखा, खूंखार जंगली जानवरों का संत श्री के समक्ष शांत भाव से विचरण करना, सर्प और खरगोश का संत श्री के समक्ष क्रीड़ा करना, सर्प का कई घंटों तक गले पर लटके रहना सहित अनेकानेक घटनाएँ विस्मय उत्पन्न करती हैं।' संत श्री से इन चमत्कारों के बारे में पूछने पर वे मौन हो जाते हैं।

संत श्री की चर्या से लोग विश्वस्त हो चुके हैं कि कंदराओं में तपस्यारत् ऋषियों की कहानियाँ मात्र किवदंति नहीं थी बल्कि यथार्थ का प्रमाणिक दस्तावेज है।

अमित पड़रिया
१६७, पांडे चौक, जबलपुर

ज्ञानोदय पाठशाला की धार्मिक प्रस्तुति

हाटपीपल्या। परमपूज्य संत शिरोमणी आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य मुनिश्री निर्णयसागर जी की प्रेरणा से दि. जैन समाज द्वारा ज्ञानोदय पाठशाला संचालित है। जिसमें जैन दर्शन, धर्म व नीति की शिक्षा प्रदान की जाती है।

शिविर सूचना

श्रमण ज्ञान भारती (विद्या निकेतन संस्थान) अंतिमकेवली श्री १००८ जम्बूस्वामी सिद्ध क्षेत्र मथुरा में जैन धर्म की शिक्षा देकर विद्वानों को तैयार कर रही है। इस संस्थान द्वारा कुशल छात्र (विद्वान) आपके क्षेत्र में ग्रीष्मकालीन शिक्षणशिविर लगाने हेतु उपलब्ध हैं। आप अपने ग्राम,शहर आदि पर शिविर का आयोजन करवाना चाहते हैं तो निम्न पते पर सम्पर्क करें-

कृपया शिविर में भाग लेने वालों की एवं समाज के घरों की संख्या अवश्य लिखें।

सम्पर्क सूत्र
निरंजनलाल बैनाड़ा, अधिष्ठाता
श्रमण ज्ञान भारती (विद्या निकेतन)
श्री १००८ जम्बूस्वामी सिद्धक्षेत्र, चौरासी, कृष्णा नगर, मथुरा
फोन : ०५६५-२४२०३२३, मो. ०५६२-३१०६१९२

महावीर जयन्ति आयोजन

मदनगंज -किशनगढ़ में भगवान महावीर स्वामी की जन्म जयन्ति पर त्रिदिवसीय कार्यक्रम चेलना जागृति महिला मण्डल द्वारा सोत्साह सम्पन्न हुए।

णमोकार पैंतीसी विधान सम्पन्न

मदनगंज-किशनगढ़ णमोकार महामंत्र के ३५ व्रत उपवास सानन्द संपन्न होने के उपलक्ष्य में वैशाख कृष्णा सप्तमी, रविवार दिनांक ११ अप्रैल २००४ को उद्यापन स्वरूप 'णमोकार पैंतीसी विधान' की पूजन का भारी जोश के साथ आयोजन किया गया।

श्रीमती शशि प्रभा, सांस्कृतिक मंत्री
चेलना जागृति महिला मंडल
मदनगंज-किशनगढ़ (अजमेर राज.)

गोधाजी एवं पाटोदी जी पुन: अध्यक्ष एवं मंत्री निर्वाचित

मदनगंज-किशनगढ़ - श्री मुनिसुव्रतनाथ दि. जैन पंचायत के चुनाव श्रीमान नेमीचन्द्र जी भौंच के सान्निध्य में सम्पन्न हुए। जिसमें श्री गुलाबचंद गोधा अध्यक्ष, श्री कैलाशचन्द्र सेठी उपाध्यक्ष, श्री निर्मलकुमार पाटोदी मंत्री, श्री पारसमल पांडया उपमंत्री, श्री विजयकुमार कासलीवाल कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए।

इसी प्रकार पंचायत के अन्तर्गत आचार्य धर्मसागर विद्यालय के चुनाव में पुन: श्री रतनलाल बाकलीवाल अध्यक्ष, श्रीरामपाल पाटनी उपाध्यक्ष, श्री नोरतमल झांझरी मंत्री, श्री चैतन्यकुमार सोगानी उपमंत्री, श्री रतनलाल बड़जात्या कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए।

निर्मल कुमार पाटोदी, मंत्री

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह सम्पन्न

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य शोध केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के ससंघ सान्निध्य में दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट इन्दौर के परिसर में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह ३१ मार्च २००४ को भव्यता पूर्वक आयोजित किया गया।

पुरस्कार समर्पण समारोह में वर्ष २००० का पुरस्कार पूर्व प्राचार्य श्री प्रद्युम्न कुमार जैन, रूद्रपुर को उनकी कृति 'Jaina & Hindu Logic' पर। २००१ का पुरस्कार डॉ. संगीता मेहता प्राध्यापिका - संस्कृत, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय को उनके शोध प्रबन्ध 'जैन संस्कृत साहित्य में वर्धमान महावीर' तथा २००२ का पुरस्कार भारतीय तेल एवं प्राकृतिक गैस के प्रबन्धक डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद को उनकी कृति 'जीवन क्या है?' पर प्रदान किया गया।

जैन विद्या संगोष्ठी

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट द्वारा स्थापित देवी अहिल्या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य शोध केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा ३१ मार्च एवं १ अप्रैल २००४ को द्विदिवसीय जैन विद्या संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें ४ सत्रों में १४ शोधपत्रों का वाचन हुआ तथा कुल ५१ विद्वान सम्मिलित हुए।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन ने अपने उद्बोधन में कहा कि आज विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध केन्द्रों पर बड़ी मात्रा में शोध हो रहा है। विद्वानों का बौद्धिक विकास तो खूब हुआ है किन्तु चारित्रिक पक्ष शिथिल हो गया है। बौद्धिक विकास और चारित्रिक विकास दोनों सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहलू ठीक नहीं होंगे सिक्के का मूल्य नहीं होगा।

धर्म वत्सल मातुश्री रूपाबाई जी का निधन

सनावद के धर्मनिष्ठ स्व. श्री अमोलकचन्द जी सर्राफ की धर्मपत्नी मातुश्री रूपा बाई जी का ८४ वर्ष की अवस्था में ११ अप्रैल २००४ को निधन हो गया। माँ रूपाबाई जी अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की सहृदय, संस्कारवान श्राविका थी। उन्होंने धर्म के संस्कार अपनी ५ सन्तानों एवं उनके परिवारों में कूट-कूट कर भरे थे। इसी का प्रतिफल है उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री मोतीचन्द जी सम्प्रति गणिनी प्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के संघ में क्षुल्लकरत्न मोतीसागरजी के रूप में साधनारत है।

डॉ. शेखरचंद जैन अहिंसा इन्टरनेशनल पत्रकारिता पुरस्कार से सम्मानित

तीर्थंकर वाणी अहमदाबाद के यशस्वी सम्पादक तथा तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. शेखरचन्द्र जैन को श्री प्रेमचन्द जैन अहिंसा इन्टरनेशनल पत्रकारिता पुरस्कार से दिनांक २५.४.०४ को सम्मानित किये जाने की घोषणा की गई है।

डॉ. अनुपम जैन, महामंत्री

ग्रामवासियों का शाकाहार का संकल्प

कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार, महावीर जयंती, ३ अप्रैल २००४ के अवसर पर पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से अण्डा, माँस, मछली इत्यादि रूप माँसाहार का सेवन जीवन भर के लिए त्याग करने हेतु ग्रामवासियों से 'शाकाहार संकल्प पत्र' भरवाए गए थे।

ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

सुमेरु पर्वत प्रतिष्ठापना दिवस मनाया गया

वैशाख शुक्ला सप्तमी, २६ अप्रैल २००४ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर स्थित सुमेरुपर्वत की प्रतिष्ठापना के २५ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में सुमेरु पर्वत के १६ अकृत्रिम जिनमंदिरों के भगवन्तों का अभिषेक एवं पूजन विधान सम्पन्न किया गया।

ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)

जैन धर्म संबंधी अखिल भारतीय डाक टिकट प्रदर्शनी में सुधीर जैन सर्वश्रेष्ठ

इन्दौर - केवल जैनधर्म संबंधी विषयों की एक अखिल भारतीय डाक टिकट प्रदर्शनी 'महाप्रज्ञपेक्स २००४' इंदौर में विगत २९ एवं ३० मार्च २००४ को सम्पन्न हुई। अहमदाबाद, भोपाल, सतना, बीकानेर, इंदौर, अजमेर, देवास, जोधपुर, गंगानगर, खण्डवा, बालोद आदि शहरों के संग्रहकर्ताओं ने इसमें भाग लिया जिसमें सतना (म.प्र.) के श्री सुधीर जैन के संग्रह को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया।

डॉ. रवीन्द्र पहलवान, ९, टेलीफोन नगर, इंदौर

शिलान्यास सम्पन्न

राजधानी नई दिल्ली के प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर 'छतरपुर एक्सटेंशन' नामक कॉलोनी के सुरम्य-वातावरण में दिनांक २४ अप्रैल २००४ वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन शुभ मुहूर्त में 'श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर जी' का शिलान्यास भव्य समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। समारोह का संचालन डॉ. सुदीप जैन ने किया।

इस कार्यक्रम की विशेषता थी कि इसमें कोई बोलियाँ नहीं लगाई गयीं। तथा बिना भेद-भाव के सभी धर्मानुरागी भाई बहिनों को इस मंगल कृत्य में सहभागिता का सुअवसर दिया गया।

डॉ. सुदीप जैन

दि. जैन शाकाहार समिति की ऐतिहासिक उपलब्धियाँ

विश्व वंदनीय भगवान महावीर के २६०३ वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में इस परिप्रेक्ष्य में संस्कारधानी की तीन शासकीय अस्पताल, गोटेगाँव शासकीय अस्पताल, नरसिंहपुर शासकीय अस्पताल के जनरल वार्ड में १२० गोदरेज अलमारियाँ, १०० कम्बल, १०० चादर, ४० स्टील पलंग, ४० गद्दे, ४० तकिया, ४० पंखे, स्टेचर, ईजी चेयर, परदे, एवं सात सीमेंट बैंच दे रहे हैं। उक्त अस्पतालों का एक-एक वार्ड गोद में ले रहे हैं और जबतक मरीज भर्ती रहेगा अंडा-मांस का सेवन नहीं करेगा संपूर्ण शाकाहारी रहेगा। इसी संदर्भ में बड़ी खेरमाई में ५०० वर्षों से दी जाने वाली बलि प्रथा को पूर्णत: बंद करवाया।

मैहर में ऊपर माँ के चरणों में यदा-कदा मांस चढ़ता था इस प्रथा को नगरनिगम एवं मैहर माँ की ट्रस्ट कमेटी से बंद कराया गया एवं ऊपर का क्षेत्र अहिंसा क्षेत्र घोषित कर दिया गया।

अभी इस संस्था से लगभग ४००० लोगों को शाकाहारी बनाया गया है।

श्री सुरेश चंद जैन, अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन शाकाहार परिषद जवाहरगंज, जबलपुर

शोक-संदेश

अत्यन्त सुप्रख्यात दानवीर, धर्मनिष्ठ, परम् गुरुभक्त, समाज हितैषी, श्रेष्ठी कैलाशचन्द जी काला, साँभर का दिनांक २४.४.०४ को ७० वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो जाने से जैन समाज के एक रत्न की क्षति हो गई है।

शांति मण्डल पूजा विधान के अवसर पर राजस्थान प्रान्तीय दि. जैन महासभा, जैन समाज साँभर व प्रबन्धकारिणी श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र लूणवां ने 'धर्मवीर' सम्मान से मरणोपरान्त सम्मानित किया। परिवार द्वारा एक लाख रुपये की राशि का सेवार्थ ट्रस्ट छात्रों के शिक्षा सहयोग हेतु तथा लगभग एक लाख रुपये स्थानीय मंदिरजी सहित अन्य शुभ कार्यों में सहर्ष उनकी पुण्य स्मृति में त्याग किया गया है। सम्पूर्ण समीपस्थ क्षेत्र के सभी जैन व अजैन उपस्थित महानुभावों ने भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

धर्मचन्द गंगवाल
महामंत्री- श्री दि.जैन अतिशय क्षेत्र, लूणवाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविताएँ

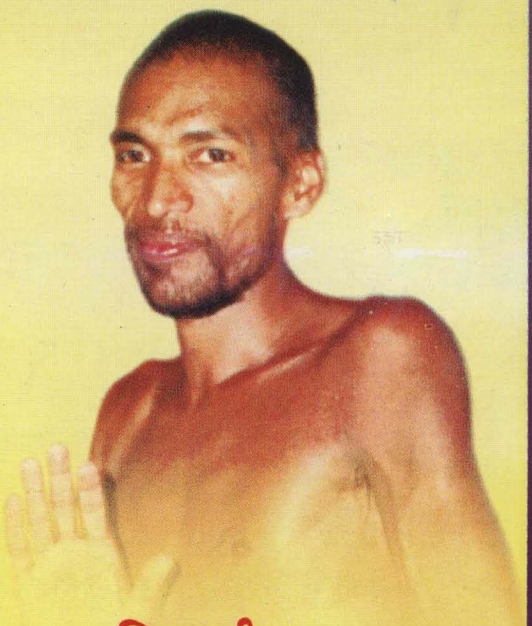

मुनिश्री क्षमासागर जी

उड़ान

नदी के ऊपर
उड़ती चिड़िया ने
आवाज दी
नदी ने मुस्कराकर कहा-
बोलो चिड़िया
चिड़िया ने
और ऊँची उड़ान ली
पहाड़ के ऊपर
उड़ती चिड़िया ने
आवाज दी
पहाड़ ने धीरे से कहा-
बोलो चिड़िया
चिड़िया ने
और ऊँचे उड़ते-उड़ते पुकारा
पर आवाज खो गयी
चिड़िया लौट आयी है
वह कहती है
कि अपनी आवाज
अपने तक आती रहे
इतना ही
ऊँचे उड़ना।

निसर्ग

सूरज ने कहा-
अपने द्वार खोलो
मेरी रोशनी
तुम्हारी होगी
वृक्षों ने कहा-
मेरे करीब बैठो
मेरी छाया
तुम्हारी होगी
नदियों ने कहा-
मेरे किनारे आकर
हाथ बढ़ाओ
मेरी बहती धारा
तुम्हारी होगी
मैंने ऐसा ही किया
अब रोशनी मेरी है
छाया भी मेरी है
मेरे जीवन की धारा
निर्बाध बहती है।

'अपना घर' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

जैन वाङ्मय के प्रामाणिक दस्तावेज : पू. प्रमाण सागर जी

(27 जून 04 : 38वें जन्म दिवस पर विशेष)

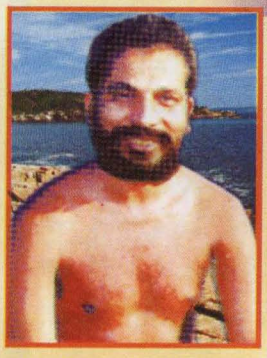

सुरेश जैन 'सरल'

- अल्पवय में अंतर्यात्रा की ओर उन्मुख होने वाले श्रेष्ठ श्रमण परमपूज्य प्रमाणसागर जी मुनि साधना संयम और सर्जना के सशक्त हस्ताक्षर सिद्ध हो चुके हैं।
- धाराप्रवाह प्रांजल और प्रामाणिक प्रवचन प्रस्तुत करने का ढंग राष्ट्र में निराला सिद्ध हो चुका है।
- प्रवचन और लेखन के समय समान रूप से शब्द सौष्ठव पर अधिकार रखने वाले एक मात्र प्रवचनकार और कृतिकार सिद्ध हो चुके हैं।
- मधुवन (शिखरजी) के समीप हजारीबाग में उदित प्रज्ञा-सूर्य की तरह संतवर हमारे समक्ष हैं, उनके प्रवचन प्रस्तुतीकरण के समय प्रतीत होता है कि मधुवन में बांसुरी की मोहकता गुंजायमान हो रही है।
- उनका पथ अध्ययनप्रियता के घाटों से होकर जाता है, उनकी शैली में उनका संयम तरंगित होता है, उनका गुण समूह उनकी साधना का ध्वजारोहण करता है।
- वे आगम के तलस्पर्शी अध्येता, जिनवाणी के प्रखर प्रवक्ता और साम्यभाव की तुला पर वात्सल्य लुटाने वाले सर्वमान्य शिरोमणि श्रमण हैं।
- जैनागम के आलोक-लोक के अमर नक्षत्र, संत शिरोमणि प.पू. आचार्यवर्य श्री विद्यासागर जी महाराज के भास्वर-शिष्यों में से एक पू. प्रमाण सागर जी मुनि के आत्मवैभव में २८ मूलगुणों के साथ-साथ, अन्य अनेक गुण भी परिलक्षित होते हैं। जैसे, चिन्मयि-धरातल पर सृजन के सोपान, ओजस्वी किन्तु ललित स्वर में प्रवचन का सम्मोहन और वचनों से झरते मंत्र।
- हिन्दीभाषी महान साधक, संस्कृत, प्राकृत और अंग्रेजी के महत्त्वपूर्ण भाषाविद् के रूप में जाने जाते हैं।
- वे जैनागम, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व, वास्तु और दर्शन के मूर्तमान प्रमाण हैं। ज्ञान, ध्यान और तप की त्रिवेणी के महान संगम सिद्ध हो चुके हैं।
- झारखंड प्रान्त के हजारीबाग नगर में २७ जून १९६७ को श्रेष्ठ श्रावक श्री सुरेन्द्र कुमार जैन की धर्मपत्नी, पूज्य मातेश्वरी श्रीमती सोहनीदेवी जी की पावन कुक्षि से जन्म लेने वाले शिशु नवीन कुमार की हिमालयी प्रगति का वर्तमान स्वरूप हैं- प.पू. मुनि प्रमाणसागर जी महाराज।
- ३१ मार्च १९८८ महावीर जयंती के पावन दिवस पर श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिरि की पवित्र भूमि पर दिगम्बरी दीक्षा प्राप्त करने वाले श्रमण का हमारी साँसें पल-पल जयघोष करती हैं।
- उनके द्वारा रचित, सर्जित, प्रवर्तित ८ महान कृतियाँ साहित्य संसार की धरोहर बन चुकी हैं। जिन्हें महान आचार्यों और वरिष्ठ विद्वानों ने जी भरकर सराहा है। उन पुस्तकों के नाम याद रखें और प्रयास कर पढ़ें-
  1. जैन तत्त्व विद्या
  2. जैनधर्म और दर्शन
  3. जैन सिद्धान्त शिक्षण
  4. दिव्य जीवन का द्वार
  5. अंतस की आँखें
  6. धर्म जीवन का आधार
  7. ज्योतिर्मय जीवन
  8. पाठ पढें नव जीवन का।
- धर्म प्रभावना में अग्रणी, श्रावक-संस्कारों को जीवंतता प्रदान करने वाले, मृदुता, सहजता और सरलता की मूर्ति, साहित्य-काव्यादि कला में निष्णात मनीषी, दार्शनिक और प्रखर तपस्वी को हमारे विनम्र प्रणाम। नमोऽस्तु।

स्वामी, प्रकाश एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org